महात्मा गाँधी

विश्व के अद्वितीय महापुरुष

लेखक
रोमाँ रोलाँ

प्रकाशक
सेण्ट्रल बुकडिपो, इलाहाबाद
१९४७

प्रथम संस्करण : सन् १९४७ ई०
२००० प्रतियाँ

मूल्य दो रुपये

मुद्रक : जगतनारायणलाल, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

कृतज्ञता-प्रकाश

मैं प्रस्तुत निबंध के सम्बन्ध में अपनी प्रिय बहिन तथा अपने परम सहयोगी मित्र श्री कालिदास नाग को हार्दिक धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके गंभीर ज्ञान तथा कृपापूर्ण अथक सहयोग ने भारतीय विचारों के इस गहन बन में मेरा पथ-प्रदर्शन किया।

मैं प्रकाशक श्री एस० जेनसन, मद्रास को भी धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने प्रकाशन-सम्बन्धी मेरे अनुरोधों को स्वीकार कर स्वतंत्र रूप से अपने प्रकाशन में इस पुस्तक को स्थान दिया।

—लेखक

महात्मा गांधी

बंकिम भौहों तले श्यामल नेत्र, दुर्बल देह, पतला चेहरा, सिर पर सफेद टोपी, खादी के वस्त्र, नंगे पैर।

वे शाकाहारी हैं, और पेय पदार्थों में केवल जल ग्रहण करते हैं। ज़मीन पर सोते हैं—सोते बहुत कम हैं, काम अविराम करते हैं। ऐसा मालूम होता है मानो उन्हे शरीर की कोई चिन्ता ही नहीं। देखने से उनमें कोई असाधारणता नहीं मालूम होती, पर यदि कोई है तो वह है उनका निखिल अस्तित्व; असीम धैर्य और अनन्त प्रेम ही उनका निखिल अस्तित्व है। दक्षिण अफ्रीका मे उनसे मिलकर पियर्सन को स्वभावतः ऐसिसी के सेंट फ्रासिस का ध्यान हो आया था। उनमें बालक सी सरलता है।[1] विरोधियों के साथ भी उनका व्यवहार बहुत सौजन्यपूर्ण होता है।[2] वे नम्र और अहमन्यता से दूर हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि वे हिचक रहे हैं वा किसी बात पर दृढ़ होने में दब रहे हैं, फिर भी उनकी अजेय आत्मा का अनुभव सभी को होता है। विश्वास और वास्तविकता के मध्य में

[1] सी० एफ़० एंड्रूज़ कहते हैं—वे बालक की तरह हँसते हैं और बच्चों को प्यार करते हैं।

[2] कुछ ही लोग उनके व्यक्तित्व के प्रसाद की अवहेलना कर सकते हैं। उनके कट्टर से कट्टर शत्रु उनके सौजन्यपूर्ण व्यक्तित्व के सामने पानी-पानी हो जाते हैं। (जोसेफ़ जे० डोक)

उन्हें कोई आस्था नहीं है[1] और वे किसी भी त्रुटि को छिपाने का प्रयत्न नहीं करते। अपनी गलती स्वीकार करने में वे निर्भय और निःसंकोच हैं। राजनीति की कुटिलता से वे अपरिचित हैं और व्याख्यान के प्रभाव से उन्हें घृणा है।[2] यहाँ तक कि वे इसके बारे में कभी सोचते नहीं; और अपनी सेवा एवं प्रतिष्ठा में आयोजित उत्सवों से उन्हें स्वाभाविक हिचक रहती है। 'पुजारी भीड़ के द्रोही' उनके लिए यथार्थ रूप मे उपयुक्त होता है। बहुसंख्यकता पर उन्हें अविश्वास है, वे भीड़ से बहुत डरते हैं और भीड़ के अनियन्त्रित आवेशपूर्ण कार्यों के घोर निन्दक हैं। अल्प-संख्यकों में उन्हें सुख मिलता है और विशेष सुख उन्हें आत्मगत होकर आन्तरिक संदेश के सुनने से प्राप्त होता है।

इसी पुरुष ने छत्तीस करोड़ पुरुषों को विद्रोह में प्रविष्ट कराया और अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिलाते हुये राजनीति में गत दो हज़ार वर्षों के उच्चतम धार्मिक सिद्धान्तो का समन्वय किया।

[1] सत्य चाहे कितना भी नगण्य हो, पर उससे विचलित होना उन्हें असह्य है। (सी० एफ़० एण्ड्रूज़)

[2] वे आवेश-पूर्ण वक्ता नहीं हैं। उनका ढंग, शान्त और गंभीर है और वे अपना प्रभाव, प्रधानतः बुद्धि पर डालते हैं। पर उनकी गंभीरता विषय पर स्वच्छतम प्रकाश डालती है। बोलने में वे अपने स्वर को इधर-उधर घुमा-फिराकर बनाते नहीं, पर उनके स्वर में अत्यधिक गंभीरता होती है। वे हाथ घुमा-फिराकर या उँगली से इंगित करके कभी कोई व्याख्यान नहीं देते। पर उनके विशुद्ध शब्द और छोटे-छोटे वाक्य अर्थ और तात्पर्य से भरे होते हैं। जब तक उन्हें यह विश्वास न हो जाय कि वे पूरी तरह स्पष्ट हैं तब तक वे किसी विषय को नहीं छोड़ते। (जोसेफ़ जे० डोक)

§

२

उनका पूरा नाम मोहनदास करमचन्द गाँधी है। उनका जन्म उत्तर पश्चिमी भारत की एक अर्ध स्वतन्त्र रियासत के अन्तर्गत पोरबन्दर में २ अक्टूबर १८६८ ई० में हुआ था। उनका घराना व्यापार और क्रियात्मकता में एक है जिसके व्यापारिक सम्बन्ध अदन से जंजीबार तक के रास्ते में सब जगह फैले हुये हैं। गाँधी के पिता और पितामह दोनों जनता के नेता थे और अपनी स्वतन्त्र आत्मा के कारण राजदण्ड के भागी हुए थे। दोनों को अपनी रक्षा के लिये भागना पड़ा था। गाँधी जी का परिवार सम्पन्न और बहुत ही सभ्य समाज से सम्बद्ध था, पर जाति में बहुत ऊँचा न था। उनके पिता जैन मत के हिन्दू थे जो अहिंसा[1] को आधार भूत सिद्धान्त मानते थे। आगे चलकर इसी सिद्धान्त को गाँधी जी ने सारे संसार में घोषित किया। जैनियों के मत में प्रेम का सिद्धान्त ही ईश्वर तक पहुँचाने वाला है न कि ज्ञान का! महात्मा जी के पिता भौतिक सम्पत्ति की बहुत कम परवाह करते थे और अपने अन्त समय में अपने परिवार के लिये अधिक न छोड़ सके थे। लगभग सभी कुछ दान में लुटा चुके थे! गाँधी जी की माता एक साध्वी स्त्री थीं जिन्हें हम हिन्दुओं में सेंट एलिजाबेथ कह सकते हैं। व्रत, दान और रोगियों की सुश्रूषा ही उनके प्रधान कार्य थे। गाँधी जी के परिवार में रामायण नित्य पढ़ी जाती थी। उनके आदि गुरू ब्राह्मण

[1] अ अर्थात् नहीं, हिंसा अर्थात् आघात या हानि पहुँचाना। किसी भी प्रकार से जीव को हानि या आघात न पहुँचाना ही अहिंसा है। यह हिन्दुओं का एक बहुत पुराना सिद्धान्त है जिसे जैन मत के प्रवर्तक महावीर, महात्मा बुद्ध तथा वैष्णवों ने अपनाया था।

थे जिन्होंने उन्हें विष्णु सहस्र नाम याद करवाया।[1] आगे चलकर गाँधी जी को बहुत अफसोस हुआ कि वे संस्कृत के अच्छे ज्ञाता न हो सके और भारत में अंग्रेजी शिक्षा से उनका यह एक बड़ा उलहना है कि उसके चक्कर में आकर भारतवासी अपनी भाषा के रत्न-भाण्डार को खो बैठते हैं। फिर भी गाँधी जी ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया है यद्यपि वेदों और उपनिषदों को उन्होंने अनुवादों ही में पढ़ा है।[2]

बचपन ही में वे एक विचित्र धार्मिक घटना में प्रविष्ट हुए। मूर्ति पूजा जो हिन्दुओं का एक प्रधान धार्मिक कृत्य है से वे व्यथित, निराश, चकित और उदासीन होकर वे अपने को अनीश्वरवादी समझने लगे और 'धर्म बेकार है' इसे सिद्ध करने के लिये उन्होंने माँस तक खाना प्रारम्भ कर दिया। यह हिन्दुओं के लिये महान पाप का काम है। इसमे गाँधी जी को और भी वेदना और असंतोष हुआ।[3] आठ वर्ष की अवस्था में उनके विवाह की बातचीत हुई और बारह की अवस्था में उनका विवाह हो गया।[4] उन्नीस वर्ष की अवस्था मे

[1] उन्होंने सात वर्ष की अवस्था तक पोरबंदर की प्रारंभिक पाठशाला में शिक्षा पाई और दस वर्ष की अवस्था, तक राजकोट में। इसके बाद वे कत्यार के हाई स्कूल में गए और सत्रह साल की उम्र के बाद अहमदाबाद की यूनिवर्सिटी में चले गये।

[2] अपरैल १३, १९२१ की पैरिया कान्फ्रेन्स में उन्होंने अपने शैशव का वर्णन किया है।

[3] बहुत दिनों बाद उन्होंने जोजेफ़ डोक से अपनी उस व्यथा की चर्चा की जो उन्हें मांस खाने से हुई थी। उन्हें नींद नहीं आ रही थी और ऐसा मालूम हो रहा था मानों वे हत्यारे हो चुके हों।

[4] पर वे बाल विवाह के पक्ष में नहीं है। उन्होंने इसके विरुद्ध

लन्दन की यूनीवर्सिटी और ला स्कूल में अध्ययन करने के लिये वे इंगलैण्ड भेज दिये गये। भारत छोड़ने के पहिले उनकी मां ने उन्हें जैनियों की तीन शपथें खिलाईं जो कि मदिरा, मांस और मोहिनी से बचने के तात्पर्य वाली हैं। सितम्बर सन् १८८८ ई० में वे लन्दन पहुँचे। पहिले कुछ महीनों के अनिश्चय और भुलावे के बाद जिसमें जैसा वे स्वयं कहते हैं, उन्होंने अपना बहुत सा समय और धन अंग्रेज बनने के प्रयत्न में बर्बाद किया, वे अपने कार्य में पूर्ण रूप से लग गये और जीवन को सख्ती के साथ नियन्त्रित करने लगे। उनके कुछ मित्रों ने उन्हें बाइबिल की एक प्रति दी पर उसके समझने का समय अभी उनको नहीं आया था। पर गीता की महानता और मधुरता का सबसे पहिले अनुभव उन्हें लन्दन ही में हुआ। इसलिये इसने उन्हें अपनी तरफ आकर्षित कर लिया। यह वही प्रकाश था जिसे हिन्दुत्व से बिछुड़ा हुआ वह हिन्दू ढूँढ़ रहा था। गीता ने उन्हें फिर से अपने धर्म पर लगाया और उन्हें विश्वास हो गया कि मोक्ष केवल हिन्दू धर्म से मिल सकता है। १८९१ ई० में वे फिर भारत लौटे पर उनका यह भारत आगमन शोक से समन्वित था। हाल ही में उनकी माता का देहावसान हो गया था जिसकी खबर उनसे छिपा रक्खी गई थी कुछ ही दिनों के बाद बम्बई की सुप्रीम कोर्ट में

आन्दोलन भी उठाया और कहा कि इससे जाति या राष्ट्र दुर्बल हो जाता है। फिर भी वे कहते हैं कि कभी-कभी इस प्रकार के संबंध, जो व्यक्ति के चरित्र के साँचे में ढलने के पहले ही हो जाते हैं, किसी अन्य विकार के आने के पहले ही ये दाम्पत्य-प्रेम का पवित्र भाव उत्पन्न कर देते हैं। गाँधी जी की पत्नी इसके उदाहरण स्वरूप हैं। दिवंगता श्रीमती कस्तूर बा गाँधी अपने पति को सभी कठिनाइयों और विपत्तियों में हाथ बटाती चली आई थीं।

वे वकालत करने लगे । कुछ वर्ष के बाद उन्होंने इसे चरित्र-दूषक व्यवसाय समझकर इसको छोड़ दिया । पर वकालत करते समय भी उन्होने यह सिद्धान्त बना लिया था कि जो भी मुकदमा हम न्याय संगत समझकर हाथ में लेंगे यदि वह बाद में हमें अनुचित या अन्यायपूर्ण प्रतीत हुआ तो उसे छोड़ देने की हमें स्वतंत्रता होगी ।

इस अवस्था पर उन्हें बहुत से ऐसे लोग मिले जिन्होंने उनके सामने उनके जीवन के मुख्य कार्य उपस्थित किए विशेषतः दो व्यक्तियों से वे बहुत ही प्रभावित हुये । उनमें से एक थे बम्बई के बेताज के बादशाह दादाभाई नौरोजी और दूसरे प्रोफेसर गोखले । भारत में प्रोफेसर गोखले एक ऊँचे दर्जे के राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने पहिले-पहल शिक्षा मे सुधार किये और दादाभाई नौरोजी जैसा कि गांधी जी कहते हैं भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के श्रीगणेश करने वाले थे । दोनो व्यक्तियों द्वारा भारत की अप्रतिमेय बुद्धि एवं विद्वत्ता यथासम्भव सौजन्य और स्वाभाविक सरलता के साथ अपना प्रतिनिधित्व प्रकट करती थी ।[1] और दादाभाई ने ही गांधी जी के युवक-सुलभ तत्परता को सामञ्जस्य प्रदान करते हुये १८९२ ई० में उन्हें पहिले-पहल वह पाठ पढ़ाया जिससे वीरतापूर्ण असहयोग और अहिंसा इन दोनों को साथ-साथ सम्बद्ध करके लोक-जीवन में

[1]आजकल के लोग, दुर्भाग्य वश इन दोनों व्यक्तियों को भूल से गए हैं । इनके कार्यों का महत्व भुला दिया गया है । पर गाँधी जो ने इनके महत्व को कभी नहीं भुलाया । विशेषतः गोखले के प्रति तो उनका प्रगाढ़ और धार्मिक प्रेम था । वे अक्सर कहा करते हैं कि गोखले और दादाभाई ऐसे महान व्यक्ति हैं कि युवक भारत को इनकी पूजा करनी चाहिए । (देखिए-हिन्द स्वराज, पारसियों को पत्र, यंग इंडिया और सत्य-स्वीकार जुलाई १३,१९२१)

बुराई को बुराई से नहीं वरन् प्रेम से ही जीता जा सकता है। उस समय कौन जानता था कि कुछ ही वर्ष बाद वे इसी जादू भरे शब्द अहिंसा को संसार में प्रसारित करके भारत के आदर्श संदेश का सम्वाद सुनायेंगे।

§

३

गांधी जी के कार्यों के दो समय-विभाजन हो सकते हैं। १८९३ से १९१४ तक उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में काम किया और १९१४-२२ तक भारत में।

यह यूरोपीय विद्वानों इतिहासकारों और आलोचकों की कूप मण्डूकता रही है कि उन्होंने दक्षिणी अफ्रीका में गांधी जी द्वारा किए गए महान कार्यों के प्रति अपनी आँखें बन्द रक्खीं और उनकी चर्चा भी न की। गांधी जी द्वारा किए गए दक्षिणी अफ्रीका के कार्य अद्वितीय रहे हैं। केवल इसीलिए नहीं कि गांधी जी के विचारों और बलिदानों की दृढ़ता बेजोड़ थी वरन् इसलिए भी कि गाँधी जी की विजय भी अपने ढँग की अकेली ही रही है।

१८९०—९ में दक्षिणी अफ्रीका में १५०,००० भारतवासी बसे हुए थे। उनमें से बहुत से नैटाल के उत्तर में निवास कर रहे थे। गोरी जाति के लोग उनकी उपस्थिति से घृणा करते थे। स्थानीय गवर्नमेण्ट ने भी गोरों की सहायता के रूप में ऐसे कानून बना रखे थे जिनसे एशियावासियों का वहाँ आना असंभव हो जाय और जो कुछ रहे सहे भी थे वे भी दक्षिणी अफ्रीका छोड़ने पर मजबूर हो जायँ। अधिक अत्याचारों से अफ्रीका के भारतीयों का जीवन असह्य और भार-स्वरूप हो रहा था। वे टैक्सों के बोझ से दबे और पुलिस

के अत्याचारों से परेशान थे। उन लोगों की दूकानें लूट ली जाती थीं, घर जला दिए जाते थे, लोगों को निरपराध ही मार डाला जाता था। यह सभी अन्याय गोरी सभ्यता के नाम से हो रहे थे।

१८६३ में गाँधी जी प्रिटोरिया एक मुकदमे के सिलसिले में बुलाए गए। वे दक्षिण अफ्रीका की स्थिति से परिचित न थे पर आरम्भ ही से उन्हें नए-नए अनुभव होने आरम्भ हुए। ऊँचे वंश के हिन्दू जिन्होंने एशिया और योरप में सर्वत्र अच्छा स्वागत पाया और जो अंग्रेजों को सहज मित्रता की दृष्टि से देखते थे, वही गाँधी जब यहाँ आए तो अचानक ही परिस्थिति के वैषम्य से एकदम चकित हो उठे। नैटाल और विशेषकर डच ट्रान्सवाल में उन्हें लोगों ने होटलों के बाहर निकालकर फेंक दिया और उन्हें पीटा भी। उन्हें इतना नैराश्य और दुःख हुआ कि वे तुरन्त ही भारत वापस लौट आते पर मुकदमा होने के कारण वे साल भर के पहले भारत वापस नहीं आ सकते थे। इन बारह महीनों में उन्होंने आत्म नियंत्रण की कला सीखी पर बराबर इन बारहों महीनों के बीतने की ही राह देखते रहे। पर जब वे अफ्रीका छोड़ने को थे तभी उनको मालूम हुआ कि दक्षिणी अफ्रीका की सरकार भारतीयों के वोट देने के अधिकार को छीनने का बिल पास करने जा रही है। अफ्रीका के भारतीय असहाय थे और अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे। उनमें कोई संगठन नहीं था और उनकी आत्माएँ दलित हो चुकी थीं। उनका कोई नेता नहीं था जो कि उन्हें पथ-प्रदर्शन कराता। गाँधी जी ने सोचा कि अफ्रीका को ऐसी स्थिति में छोड़कर भारत जाना अच्छा नहीं। भारतीयों के प्रश्न को उन्होंने अपना ही प्रश्न समझा और उसी में तन-मन-धन से अपने को जुटाकर वे अफ्रीका ही में रह गये।

अब गवर्नमेण्ट की पाशविक बर्बर शक्ति को एक अजेय आत्मा की आध्यात्मिक शक्ति से सामना करना पड़ा। गाँधी जी वकील थे

और उन्होंने अपने न्याय की भाषा में पहले उस कानून को गैर कानूनी करार दिया। इसमें उन्हें प्रबल विरोध के होते हुए भी सफलता मिली। इसके संबंध में उन्होंने बड़े लम्बे-लम्बे आवेदन-पत्रों पर असंख्य जनता के हस्ताक्षर करवाए। फिर उन्होंने नैटाल में इण्डियन काँग्रेस की स्थापना की, और भारतीय शिक्षा का एक एसोसिएशन कायम किया। कुछ ही समय बाद उन्होंने "इन्डियन ओपीनियन" नामक एक अख़बार संपादित किया और उसे अंगरेजी भारत की तीन भाषाओं में निकाला।[1] अन्त में दक्षिणी अफ्रीका वालों का कार्य पूर्ण रूप से करने के लिए उन्होंने सोचा कि उन्हीं के समान बन जायँ। उनकी वकालत दक्षिणी अफ्रीका में बहुत ही अच्छी चल गई थी (गोखले कहते हैं कि गाँधी जी उस समय पांच या छः हजार पौण्ड सालाना पैदा करते थे)। सेंट फ्रान्सिस की तरह उन्होंने ग़रीबों का उद्धार करने के लिए इतनी चलती हुई वकालत पर लात मार दी। पीड़ित भारतीयों की तरह रहने के लिए उन्होंने जीवन के सभी बंधनों को छोड़ दिया। उन्होंने उन्हें असहयोग का पाठ पढ़ाकर उच्च बनाया। १६०४ में उन्होंने डरबन के पास फ़ोयनिक्स में टाल्सटाय की प्रणाली पर एक कृषि-उपनिवेश स्थापित कर लिया। उन्होंने अपने सहकारियों को बुला-बुलाकर ज़मीन दी और उनसे ग़रीबी से रहने का वचन ले लिया। फिर स्वयं अपने लिए उन्होंने अत्यंत तुच्छ कार्य लिए।

[1] सितम्बर, १६१० का लिखा हुआ टाल्सटाय का बहुत लम्बा पत्र इन्डिया ओपीनियन के "गोल्डेन नंबर" में निकला था। टाल्सटाय ने गाँधी जी के कार्यों के प्रति सच्ची और धार्मिक श्रद्धा दिखलाई और कहा कि यह कार्य केवल गाँधी या कुछेक भारतीयों का ही नहीं है वरन् सारी मनुष्यता का कार्य है। टाल्सटाय के और भी अनेक पत्र गाँधी जी के पास आये जो समय-समय पर प्रकाशित होते रहे।

वर्षों उस शान्त उपनिवेश ने गवर्नमेण्ट का विरोध किया। इसने शहरों से अपने संबंध तोड़ लिए और फलस्वरूप धीरे-धीरे देश की औद्योगिक प्रगति मंद पड़ने लगी। इसके इस आध्यात्मिक असहयोग ने इतना प्रबल रूप धारण किया कि सरकार की सभी सख्तियां इसके सामने यों निष्फल होती गईं जैसे पहले क्रिश्चियनों के प्रति किए गए रोम के सभी अत्याचार निष्फल होते गए थे। फिर भी इन रोम के क्रिश्चियनों ने कभी उतना प्रेम और सौजन्य न दिखाया होगा जितना गांधी जी ने। जब-जब सरकार की स्थिति डावांडोल होती थी तो गांधी जी अपने सहयोग से उसे बल प्रदान करते थे। १८६६ के बूअर वार में उन्होंने एक भारतीय रेडक्रास का संगठन किया जिसकी वीरता की प्रशंसा अनेक बार हो चुकी है। १६०४ में जब जोहान्सबर्ग में प्लेग फैल चला तो गांधी जी ने एक अस्पताल का प्रबन्ध किया। नैटाल की सरकार ने गांधी जी को इन सब कामों के लिए सार्वजनिक रूप से धन्यवाद दिया।

पर इन सेवाओं से भी गोरों के व्यवहार में कोई अधिक परिवर्तन न आया। गाँधी जी अक्सर पकड़कर कैद कर लिये जाते थे।[1] सरकार के द्वारा धन्यवाद दिये जाने के कुछ ही दिन बाद वे फिर पकड़कर कैद कर लिये गये। पर किसी भी प्रकार की पीड़ा एवं दण्ड के कारण गांधी जी ने अपना आदर्श नहीं छोड़ा। परीक्षा के लिये उन्होंने अपने को पूर्ण रूप से बली बना लिया था। अपने ऊपर किए गए हर अत्याचार का एकमात्र उत्तर उन्होंने १६०८ में छपी हुई 'हिन्द स्वराज'

[1] नटेसन द्वारा मद्रास से प्रकाशित गांधी जी की (speaches and writing) में उनके जेल के अनुभवों का विनोदपूर्ण वर्णन है। कभी-कभी गांधी जी को उन्हीं के साथियों ने पीटा। वे गांधी जी की संयत नीति में संदेह करते थे और उनसे द्वेष भी करते थे।

नामक पुस्तक में दिया। यह पुस्तिका वीरतापूर्ण प्रेम की एक अनुपम गीता है।

यह लड़ाई २० साल तक चलती रही। सन् १९०७-१४ में अपना पूर्ण रूप धारण कर लिया। यद्यपि कुछ बुद्धिमान और दूरदर्शी लोग विरोध कर रहे थे फिर भी अफ्रीका की सरकार ने एक जावा एशियाटिक ऐक्ट पास कर दिया। इसमे गांधी जी को बहुत बड़े पैमाने पर असहयोग करना पड़ा।

१९०६ सितंबर को जोहान्सबर्ग मे एक बहुत बड़ा जलूस निकला। इसमें भारतीयों ने शान्तिपूर्ण असहयोग का बीड़ा उठाया। अफ्रीका के चीनियों ने हिन्दुओं का साथ दिया। सभी धनी, गरीब, ऊँचे एशियावासी एक साथ होकर यह धर्म-युद्ध लड़ने लगे। हजारों की संख्या में एशियावासी जेलों में ठूंस दिए गए और जब जेलों में जगह न मिली तो खानों के गड्ढों में भर दिए गए। ऐसा मालूम होता था मानों एशियावासियो को जेल से प्रेम सा हो गया हो। वे सहर्ष जेल[1] गए, और अनेक व्यक्ति शहीदों की मौत मारे गए। आन्दोलन छिड़ चला। १९१३ में यह आन्दोलन ट्रान्सवाल और नैटाल तक फैल गया। हड़ताल, सभाएँ और ट्रान्सवाल तथा नैटाल के उत्तेजित जन-समूह से संपूर्ण दक्षिणी अफ्रीका में उत्तेजना और सनसनी फैल गई। एशिया में भी उत्तेजना फैली और भारत वर्ष में बड़ी ही गर्म सनसनी फैली। भारतीय वाइसराय लार्ड हार्डिञ्ज ने जन-मत द्वारा प्रेरित होकर अन्त में दक्षिणी अफ्रीका के सरकार के विरुद्ध शिकायत भेजी।

[1] जोसेफ़ जे० डोक ने कहा है कि गाँधी जी को कैदियों का कपड़ा पहनाकर जोहान्सबर्ग के किले में ले जाकर साधारण चीनी अपराधियों के बीच में बुरी तरह ढकेल दिया गया।

उस महात्मा की अजेय तत्परता और जादू सरीखे प्रभाव ने अपना असर दिखाया।[1] शासन-शक्ति को वीरतापूर्ण प्रेम के सामने झुकना पड़ा। वही जनरल स्मट्स जो १६०६ मे कह रहे थे कि भारतीयों के विरुद्ध पास हुए कानून में से एक वाक्य भी रद्दोबदल नहीं किया जायगा, ५ साल बाद १६१४ में उस कानून को एकदम समाप्त करने को प्रसन्नतापूर्वक उद्यत हुए।[2] सरकारी कमीशन ने प्रत्येक स्थल पर गांधी जी का साथ दिया। १६१४ में एक ऐक्ट द्वारा ३ पौण्ड का एक पोल टैक्स समाप्त कर दिया गया। नैटाल में आने के इच्छुक प्रत्येक भारतीय को बसने की स्वतंत्रता मिल गई। २० वर्ष के अनवरत युद्ध के बाद असहयोग आन्दोलन की विजय हुई।

§

४

जब गाँधी जी भारत आए तो नेता की महानता पा चुके थे।

तीस वर्ष पहले कुछ अँगरेज़ों ने जिनमें एक एम० ओ० ह्यूम भी थे, नेशनल इंडियन कांग्रेस की स्थापना की थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही इस संस्था का विकास होता आ रहा था। भारतवर्ष में भी स्वतंत्रता का आन्दोलन जड़ पकड़ चुका था।

उसी समय रूस पर जापानी विजय के द्वारा एशियावासियों का

[1] सी० यफ० एण्ड्र्ज़ और डब्ल्यू० डब्ल्यू० पियर्सन, इन दो उच्च विचार वाले अँगरेज़ों ने गाँधी जी के प्रयासों का समर्थन किया।

[2] १२ मई १६२० में लिखे गए एक निबंध में गांधी जी ने इसका उल्लेख किया है।

स्वाभिमान पूर्ण रूप से जाग्रत हो उठा था। भारतीय राष्ट्र-सेवक लार्ड-कर्ज़न की नीति से तंग आ गए थे। कांग्रेस में एक गरम दल बन गया था और इसकी आक्रमणशील नीति भारत में खूब प्रचार पा रही थी। १६१४ की लड़ाई तक जे० यच० गोखले की अध्यक्षता में नरम-दल की वैधानिक काँग्रेस धारा काम कर रही थी। गोखले एक ऊँचे दर्जे के राष्ट्रसेवी थे परन्तु फिर भी वे अँगेरेज़ों की वफादारी में विश्वास करते थे।

यद्यपि भारत में होमरूल या स्वराज्य के सिद्धान्त पर लोग सहमत थे पर बहुत से ऐसे दल भी थे जो स्वराज्य के इस स्वरूप में मतभेद रखते थे। कुछ लोग कनाड़ा की भांति डोमिनियन स्टेट्स या औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में थे और कुछ लोग जापान की भांति एकदम स्वतंत्र होने के पक्ष में थे। गांधी जी ने इस समस्या का एक हल निकाला। पर यह हल राजनीतिक नहीं वरन् धार्मिक था। पर तह में इसके अन्दर औरों के विचारों से भी अधिक गंभीरता तथा प्रगतिशीलता छिपी थी। यह हल दक्षिणी अफ्रीका की स्थिति के अनुकूल था और गांधी जी को यह अनुभव हुआ कि इस हल की रूपरेखा बदल कर भारत के अनुकूल बनानी पड़ेगी। उनके सिद्धान्त 'हिन्द स्वराज्य' में मूल रूप से मिलते हैं। इतने अरसे तक दक्षिणी अफ्रीका में रहने के कारण गांधी जी की भारत की स्थिति से जानकारी भी कुछ कम ही रह गई थी। इसलिए इन्होंने सोचा कि कुछ करने के पहले भारतीय स्थिति का सम्यक् अध्ययन करना आवश्यक होगा।

इस समय गांधी जी को इंगलैण्ड से कोई बैर नहीं मालूम हो रहा था। इसके विपरीत जब १६१४ में लड़ाई छिड़ गई तो वे इंडियन एम्बुलेंस कोर का संगठन करने लंदन गए, जैसा कि उन्होंने १६२१ में लिखे गए एक पत्र में बतलाया था कि वे उस समय अपने को अंगरेजी साम्राज्य का नागरिक सच्चे हृदय से मानते थे। "भारत में

प्रत्येक अंगरेज" को संबोधित करके जो पत्र उन्होंने १६८० में लिखा उसमें उन्होंने इस बात पर काफी जोर डाला है। उन्होंने चार बार इंगलैण्ड के लिए अपनी जान खतरे में डाली और १६१६ तक अँगरेजों की सहायता करने में उन्हें पूर्ण विश्वास था। पर अब उनकी आशाएँ पूरी न हुईं और अब वे ऐसा विचार कभी भी नहीं रख सकते थे।

अकेले गांधी जी ही को ऐसे परिवर्तन का अनुभव नहीं हुआ १६१४ में संपूर्ण भारतवर्ष इस "न्याय के लिए युद्ध" से तंग आ गया था। किसी का अँगरेज़ों में विश्वास बाकी न बचा था। इंगलैंड ने कहा था कि यदि भारत इस युद्ध में हमारी मदद करेगा तो उसे होमरूल दे देंगे। १६१७ ई० में ई० एस० मांटेग्यू ने भारत की उत्तर दायित्वपूर्ण सरकार स्थापित करने का प्रलोभन दिया था। सलाह मशविरे हुए और वायसराय चेम्सफोर्ड और मांटेग्यू ने एक रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार भारत में सुधार की योजना सोची गई थी। मित्र-राष्ट्रों की सेना की स्थिति १६१८ में बहुत ही खतरनाक थी। २ अपरैल को लायड जार्ज ने भारतीयों की मदद मांगते हुए एक अपील भेजी और दिल्ली में बैठी हुई कानफरेंस ने यह घोषित किया कि भारत की स्वतन्त्रता अब एकदम समीप है। भारत ने भी इस आशा का उत्तर अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक दिया। भारत ने ६८५००० आदमी दिए और बहुत बड़े-बड़े त्याग इंगलैण्ड के लिए किया और फिर अब अपने पुरस्कार के लिए आशापूर्ण प्रतीक्षा कर रहा था।

जब १६१८ में लड़ाई का डर हट गया तो अंगरेजों को मुसीबत की घड़ी में भारत द्वारा की गई सेवाओं का ध्यान न रहा। संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर देने के बाद गवर्नमेण्ट को किसी खतरे का अंदेशा न रह गया। उसने स्वतन्त्रता देने के बदले रही-सही स्वतन्त्रता को भी खतम कर दिया। दिल्ली की लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश किए हुए रौलट बिल द्वारा, इतनी सेवाओं के करने वाले भारत के प्रति सरकार

ने अविश्वास प्रकट किया। इन बिलों के द्वारा लड़ाई में लागू किए गए डिफेन्स ऐक्ट को फिर से लागू कर दिया और सदा के लिए सेन्सर और पुलिस की सख्तियों की स्थापना कर दी। गुप्त पुलिस विभाग की स्थापना बहुत पक्की रीति से कर दी गई और भारत को एकदम कड़ी यंत्रणाओं और प्रतिबन्धों के अन्दर जकड़ दिया गया। संपूर्ण भारतवर्ष में असंतोष की ज्वाला धधक उठी। असहयोग छिड़ गया और गाँधी जी ने इसे संचालित किया।

अब तक गाँधी जी केवल सामाजिक सुधार में दिलचस्पी ले रहे थे। गुजरात के अन्तर्गत कैरा और चम्पारन में पहले-पहल उन्होंने इस असहयोग के अस्त्र का उपयोग किया। इस असहयोग आन्दोलन को गाँधी जी ने सत्याग्रह का नाम दिया है जिसके बारे में हम आगे उल्लेख करेंगे।

पर १६११ तक वे इस राजनीतिक आन्दोलन में जी खोलकर न आए थे। १६१६ में मिसेज एनीवेसेन्ट द्वारा गाँधी जी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से परिचित होकर विकास को प्राप्त होने लगे। लोकमान्य तिलक एक महान् आदर्श हिन्दू थे। उनमें असाधारण योग्यता और क्रियात्मकता थी। असाधारण शक्ति, विशाल मस्तिष्क, कुशाग्र बुद्धि और विशुद्ध आचरण द्वारा वह एक अद्वितीय और आदर्श भारतीय थे। उनका दिमाग़ गांधी जी से कहीं अधिक तेज़ था और उनके विचारों में एशियाई सभ्यता अपेक्षाकृत बहुत ही ठोस रूप में घुली मिली हुई थी। वे एक प्रखर गणितज्ञ थे पर उन्होंने सारी प्रतिभा देश-सेवा के लिए अर्पित कर दी थी। गाँधी जी से भी अधिक सीमा तक वे अपने लिए कोई सम्मान नहीं चाहते थे। वे केवल सिद्धान्तों की विजय चाहते थे जिससे वे राजनीतिक कार्यों से शीघ्र ही छुट्टी पाकर वैज्ञानिक कार्यों में लग जायँ। यावज्जीवन वे भारत के निर्विवाद नेता बने रहे। कौन कह सकता है कि यदि वे १६२० में असमय में ही न मर जाते तो क्या

होता। यदि तिलक जीवित रह जाते तो गाँधी जी इतने शीघ्र प्रकाश में न आ पाते, यह निश्चित था। पर फिर भी ऐसे लोगों की कमी न थी जो गाँधी जी की भी आत्मा की महानता में विश्वास रखते थे। गाँधी जी क्रियात्मक क्षेत्र में तिलक का सामना कैसे कर सकते थे? पर आध्यात्मिक बल के कारण गाँधी जी की भी महानता माननी पड़ती है। पर भाग्य ने गाँधी जी का साथ दिया। यह केवल तिलक के लिए ही नहीं वरन् सारे देश के लिए एक दुःख की बात थी। स्वयं गाँधी जी तक के लिए यह एक दुःख की घटना थी। जिस रूप में तिलक बहुसंख्यकों का नेतृत्व करने में कुशल और सफल थे, उस प्रकार गाँधी जी कभी नहीं हो सकते थे। गाँधी जी को यह संतोष की बात होती कि तिलक भारत का नेतृत्व करते और गाँधी जी उनकी आधीनता में आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करते। तिलक जन्म से ही प्रतिभावान् और कुशाग्र बुद्धि थे। वे गणित विद्या विशारद थे इसलिए उन्हें संख्याओं पर विश्वास था। वे बहुसंख्यकों का नेतृत्व करने में विश्वास ही न करते थे वरन् सफल भी थे। उनमें धार्मिक हिचक न थी। वे कहते थे कि राजनीति साधुओं के लिए नहीं है। वह घोर वैज्ञानिक सत्य को भी देश-प्रेम के सामने कुचल सकते थे। इस निस्संकोच, निर्भीक और बहादुर नेता ने जिसका व्यक्तिगत जीवन एक तपस्या का जीवन रहा है कहा कि राजनीति में भी सभी चीजें उचित और न्याय-संगत हैं। यह कहा जा सकता है कि तिलक की राजनीति के दृष्टिकोण और मास्को के तत्कालीन विचारकों और राजनीतिज्ञों के दृष्टिकोण में बहुत कुछ समानता थी। पर गाँधी जी का आदर्श यह नहीं था। इतने गंभीर और तत्पर दो व्यक्तियों में विरोध होना स्वाभाविक ही है। पर प्रत्येक एक दूसरे का आदर करता था और एक दूसरे को प्रशंसा की दृष्टि से देखता था। पर गाँधी जी ने यह विचार कर लिया था कि समय आएगा तो वे

सत्य के लिए देश, समाज, राष्ट्र आदि सभी की अवहेलना कर सकते हैं। उन्हें सत्य सबसे अधिक प्रिय था और तिलक को देश सत्य से भी अधिक प्रिय था। वे देश की स्वतंत्रता के लिए धर्म के ढकोसले और सत्य बंधन आदि सभी प्रतिबन्धों को कुचल सकते थे। उन्हें केवल देश की स्वतंत्रता की इच्छा थी। देश की स्वतंत्रता ही उनका धर्म था, स्वतन्त्रता ही उनका सत्य था और स्वतन्त्रता ही उनकी देवी थी जिसको प्रसन्न करने के लिए वह सभी कुछ करने पर कटिबद्ध थे। गाँधी जी को सत्य से अधिक प्रेम था—११ अगस्त १६२० को उन्होंने कहा "मैं भारत की स्वतंत्रता चाहता हूँ क्योंकि मुझे विश्वास है कि भारत संसार का एक लाभदायक कार्य करने के लिए संसार में है। मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमा नहीं है। मुझे इसमें अनुराग और आस्था है, और मेरा इसके प्रति जो यह अनुराग है वह भारत की स्वतंत्रता को भी, यदि वह उसमें बाधक हो, अतिक्रमण कर सकता है।[1]

ये ऊँचे विचार वाले व्यापक शब्द उनके विचारों की कुञ्जी हैं, और इन्हीं को आधारभूत सिद्धान्त मानकर उन्होंने भारत का आन्दोलन आरम्भ किया। इससे सिद्ध होता है कि भारत का यह वीर संवाददाता संसार का संवाददाता है। यह हम लोगों में से एक है। जो संग्राम यह लड़ रहा है वह इसी का या भारत का ही नहीं वरन् हमारा भी संग्राम है।[2]

[1] अगस्त ११, १६२० गाँधी जी तलवार के सिद्धान्त का विरोध करते हैं।

[2] मानवता एक है। भले ही उसमें अनेक जातियाँ हों। पर जो उनमें बड़ी जातियाँ हैं उनके उत्तरदायित्व भी बड़े हैं।

§

५

यह ध्यान देने की बात है कि जब महात्मा गाँधी १६२१ में भारतीय-राजनीति के क्षेत्र में आये तो केवल भारत को रौलट बिल के अत्याचार से बचाने के उद्देश्य से आन्दोलन अवश्यभावी था। इसके बचाने की कोई संभावना नहीं थी। इसलिए अब उनका जो कार्य बचा था वह था इस आन्दोलन को अहिंसात्मक रूप में संचालित करना।

गाँधी जी के कार्यों को समझने के लिए यह ध्यान देना होगा कि उनका सिद्धान्त एक विशालकाय महल की भाँति है जिसकी दो बिलकुल भिन्न और विपरीत दरें हैं। एक तो है नीचे की दर जो गुप्त और छिपी कार्यवाहियों से संबंध रखती है। इस विशाल और अडिग नींव पर उनकी राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन वाली दर आश्रित है। यह उनके विचारों के सर्वथा अनुकूल तो नहीं है पर फिर भी समय के अनुसार यही एक सर्वोत्तम आन्दोलन की रीति है। यह परिस्थितियों के सामञ्जस्य के ध्यान के आधार पर बनाई हुई प्रणाली है जिसको गाँधी जी करते चले आ रहे हैं।

दूसरे शब्दों में गाँधी जी स्वभावतः तो धार्मिक हैं ही, पर उनके राजनीतिक सिद्धान्त और भी अधिक धार्मिक हैं। आवश्यकता से प्रेरित होकर वे राजनीतिक नेतृत्व कर रहे हैं। जितने नेता हैं वे कुछ ही समय बाद लुप्त हो जाते हैं। गाँधी जी को मजबूरन देश की संकट-ग्रस्त नौका पार लगाने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में लँगोटी धारण करके उतरना पड़ता है।

गाँधी जी जनता के धर्म हिन्दुत्व में विश्वास करते हैं। पर वे कोई सांस्कृतिक विद्वान् नहीं हैं कि सभी धार्मिक वाक्यों के सभी अर्थों पर अधिक ध्यान दे सकें। न वे अपने धर्म के अंध-विश्वासों ही में आस्था

रखते हैं। उनका धर्म वही है जो उनकी बुद्धि को जँचे और उनके अन्तःकरण के अनुकूल हो।

"मैं धर्म के नाम पर बुराइयों की प्रशंसा नहीं करूँगा।"

"हिन्दू धर्म में विश्वास करने का अर्थ यह नहीं कि मैं उसके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक श्लोक को दिव्य मानकर उनका अन्ध-अनुसरण करूँ। कोई सिद्धान्त कितनी ही बारीकी के साथ क्यों न समझाया गया हो पर यदि वह बुद्धि और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध है तो मैं कभी भी उसे नहीं मानूँगा।"

वे यह भी नहीं मानते कि हिन्दुत्व ही संसार में एकमात्र धर्म है। यह एक बहुत ध्यान देने की बात है।

"मैं वेदों की एकमात्र दिव्यता में विश्वास नहीं करता। मैं बाइबिल, कुरान, अविस्ता में उसी प्रकार दिव्यता का विश्वास करता हूँ जैसे कि वेदों में।......हिन्दू-धर्म कोई प्रचारशील धर्म नहीं है। हिन्दू धर्म में इतना स्थान है कि इसके अन्तर्गत कोई भी संसार के किसी पैग़म्बर या दिव्य पुरुष का ध्यान कर सकता है।......हिन्दू धर्म कहता है कि सभी लोग अपनी-अपनी समझ और अपने-अपने विश्वास के अनुरूप ईश्वर की उपासना करें। इस प्रकार हिन्दू धर्म किसी धर्म से द्वेष नहीं रखता।"

वे जानते हैं कि धर्म के नाम बहुत सी ग़लतियाँ और कुरीतियाँ समाज में फैल गईं हैं। वे उन सबसे घृणा करते हैं।

"हिन्दू-धर्म के लिए अपनी भावनाओं को मैं केवल एक रूप में वर्णन कर सकता हूँ। मैं हिन्दू धर्म को उसी हद तक मानता हूँ जिस हद तक मैं अपनी स्त्री को मान सकता हूँ। अपनी स्त्री में मुझे अटूट अनुराग है, और कोई भी शक्ति मुझे उसकी आत्मा से अलग नहीं कर सकती पर मैं यह भी जानता हूँ कि उसमें दोष भी है। पर यह जानते हुए जो अनुराग की अटूटता है वह भंग नहीं हो सकती है। उसी

प्रकार मैं हिन्दू धर्म को प्रेम करता हूँ। मैं उसके अन्दर आई हुई त्रुटियों को भी जानता हूँ पर मेरा उसमे घनिष्ट और अविछिन्न संबंध हैं। मुझे उतनी प्रसन्नता कभी नहीं होती जितनी रामायण की चौपाइयों या गीता के श्लोकों के सुनने पर होती है। मैं जानता हूँ कि हिन्दू धर्म में दिन बदिन कुरीतियाँ आती जा रही हैं। पर उससे मैं हिन्दू धर्म को बुरा नहीं कह सकता, न उससे मुख मोड़ सकता हूँ। मेरा संपूर्ण व्यक्ति एक सुधारक है। पर सुधार की धुन में मैं हिन्दू धर्म के महत्वपूर्ण किसी भी सिद्धान्त की उपेक्षा नहीं कर सकता।"

वे महत्वपूर्ण क्या चीजें हैं जिनमें गाँधी जी को विश्वास और आस्था है। ६ अक्तूबर १९२१ में लिखे गए एक लेख में गाँधी जी ने हिन्दू धर्म के विषय में अपने विचार लिखे थे।

(१) वे कहते है कि वे वेदों पुराणों उपनिषदों में विश्वास करते हैं और अवतारवाद में उनकी आस्था है।

(२) वे वर्णाश्रम धर्म में विश्वास करते हैं। पर वे इसकी आधुनिक रूपरेखा से सहमत नहीं है।[1]

(३) वे गो पूजा एवं गोरक्षा में प्रचलित से अधिक ऊँचा विश्वास रखते हैं।

(४) वे मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करते।

कोई भी आदमी जो इस अन्तिम लाइन तक पढ़ेगा वह यहीं रुक जायगा क्योंकि यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे हम लोगों की प्रवृत्तियों में कोई समानता नहीं हो सकती। हमारी विचारधाराओं में संतुलन शक्ति की कमी है इसलिए हम आसानी से इसका महत्व नहीं समझ

[1]शाब्दिक रूप से वर्ण का अर्थ है रंग या जाति, और आश्रम का अर्थ है, संयम का स्थान। दूसरे शब्दों में जातियों के संयम का स्थान समाज ही है।

पाते पर जब हम शुद्ध विचार मे आगे पढ़ते हैं तो हमारे विचार उनके विचार से सहमत होने लगते हैं। उनका निम्नलिखित सिद्धान्त हम लोगों को अधिक परिचित है।

मैं हिन्दू धर्म के इस वाक्य में बहुत अधिक विश्वास करता हूँ कि "जो मनुष्य अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, और अपनी सभी संग्रहीत सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं करता वह शास्त्र को बिल्कुल नहीं जानता।"

यहाँ हिन्दू धर्म का यह वाक्य बाइबिल के वाक्यों की बात कह रहा है। और गाँधी जी को उनकी समानता का ध्यान भी था। जब एक अँगरेज़ पादरी ने उनसे १६२० में पूछा कि उन्हें किस पुस्तक ने सबसे अधिक प्रभावित किया तो उन्होंने कहा—"न्यू टेस्टामेण्ट ने।" गाँधी जी के आध्यात्मिक धर्म के अन्तिम शब्द "न्यू टेस्टामेण्ट" के उद्धरण मात्र हैं। वे कहते हैं कि शान्त अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन की प्रेरणा उन्हें माउन्ट के सर्मन १८६३ में पढ़ने के बाद मिली थी। जब पादरी ने उनसे उत्सुक दृष्टि से पूछा कि आपको यह प्रेरणा हिन्दू-धर्म से नहीं मिली तो उन्होंने कहा कि यह प्रेरणा उन्हें गीता से, जिसकी वे अत्यन्त ही श्रद्धा करते थे, मिली थी, पर "न्यू टेस्टामेण्ट" ने इस प्रेरणा को पूरा कर दिया।[1] गाँधी जी यह भी कहते हैं कि टालसटाय का यह सिद्धान्त कि ईश्वरीय साम्राज्य तुम्हारे ही अन्दर विद्यमान है

[1]जोसेफ जे० डोक कहते हैं कि ईश्वर सभी युगों में भिन्न-भिन्न रूपों में अवतार लेता रहा है। क्योंकि कृष्ण कहते हैं। "यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।" गाँधी जी ईसा को इसी रूप में मानते हैं, पर ईसा ही ईश्वर के प्रथम संदेशवाहक नहीं है, वरन् उनकी ही तरह अनेक देशों में अन्य ईश्वरीय अवतार हुए हैं।

उनके पथ-प्रदर्शन में पर्याप्त सहायक बना।[1]

यह याद रखने की बात है कि यह एशियाई विचारक रस्किन और प्लेटो के अनुवाद करता है, थोरो का उद्धरण देता है, मैजिनी की प्रशंसा करता है। एडवर्ड कारपेन्टर को पढ़ता है और थोड़े शब्दों में वह उन सभी विचारकों से परिचित है जिन्हें आज तक यूरोप और अमेरिका ने उत्पन्न किया है।

कोई ,कारण नहीं, जब गाँधी हमारे तत्ववेत्ताओं को समझते हैं तो हम पश्चिमी लोग उनके विचार न समझ सकें। हाँ समझने के लिए गांधी जी का अध्ययन जरा ध्यान से करना होगा। यह सच है कि यदि गाँधी जी के सिद्धान्तो के केवल शब्द लिए जायँ तो वे सहसा हमें चकित कर देते हैं और यदि दो पैराग्राफ़ यों ही बिना ध्यान दिए पढ़ें तो ऐसा मालूम होता है कि उनके विचारों और हमारे विचारों में कभी मेल हो ही नहीं सकता। लगता है कि यूरोप और एशिया के विचारों में बहुत अंतर है। पहले पैराग्राफ़ का संबंध गो-रक्षा से है और दूसरे का संबंध जाति एवं वर्ण व्यवस्था से है। जहाँ तक गाँधी जी के मूर्तिपूजा के विचार हैं उनका कोई विशेष अध्ययन आवश्यक नहीं। गाँधी जी अपना पक्ष स्वयं स्पष्ट कर देते हैं कि मूर्तियों के प्रति मेरी कोई विशेष श्रद्धा नहीं है पर मैं मानता हूँ कि मूर्तिपूजा करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। वे इसे मनुष्य के मन की कमजोरी से अवश्यम्भावी रूप से अवस्थित समझते हैं—क्योंकि हम सभी "अभिव्यक्तिवाद के पीछे दौड़ते फिरते हैं।" जब वे यह कहते हैं

[1] "हिन्द स्वराज" में उन्होंने टालसटाय के पुस्तकों की एक सूची दी है और उसे अपने अनुगामियों के पढ़ने के लिए अनुमोदित किया है। उसमें है। ईश्वर का साम्राज्य तुममें है—कला क्या है—हम क्या करेंगे—इत्यादि।

कि मैं मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करता तो वे उस सत्य से अधिक और कुछ नहीं कहते जो हमारे पश्चिमी कतिपय गिर्जाघरों में प्रचलित है।

गो रक्षा गांधी जी के विचार में हिन्दू-धर्म का केन्द्रीय-सत्य है। वे इसे मानवीय विकास का एक आश्चर्यजनक पक्ष मानते हैं अर्थात् गोरक्षा मनुष्य जाति के विकास के साथ सम्बद्ध है। क्यों? क्योंकि वे कहते हैं कि गौ समस्त उपमानव संसार का प्रतीक है। गौ रक्षा के अर्थ यह हैं कि मनुष्य अपने बचन-हीन भाइयों से एक सुलह करता है। गौ रक्षा, मनुष्य और पशु-संसार में बन्धुत्व का भाव स्थापित करती है। गांधी जी कहते है कि "पशु का आदर और श्रद्धा करने मे मनुष्य अपने वर्ग से कुछ और ऊपर उठकर जितने भी जीवित प्राणी ससार में हैं, उन सबकी श्रद्धा का पात्र बन जाता है।"

यदि अन्य पशुओ को छोड़कर केवल गौ की रक्षा पर गाँधी जी ने ज़ोर दिया तो वह इसलिए कि भारतवर्ष में गौ मनुष्य की सबसे निकट संगिनी है और वृद्धि की दात्री है। केवल यही नहीं कि गौ दूध देती वरन् यदि गऊ न रहें तो कृषि अर्थात् खेती-बारी असंभव हो जाय। और गांधी जी इस सरल बेचारी गऊ में दया एवं करुणा भरी कविता का अनुभव करते हैं। जितना प्रभाव उन पर किसी करुण-रस की उत्कृष्ट कविता का पड़ सकता है वही इस बेचारी सीधी-साधी भोली-भाली गऊ को देखकर पड़ता है। पर गाँधी जी के गो-रक्षा में पूजा के समान कोई बात नहीं आती। गांधी जी के इस अपूर्व स्वर्गीय भाव को अन्य कौन समझ सकता है। कुछ-कुछ सेंट ऐसिसी ने समझा था। इस दृष्टिकोण को वे एकदम उचित एवं न्याय-संगत कहते हैं जब वे यह घोषित करते हैं कि गौ रक्षा हिन्दू धर्म की संसार को एक बहुत बड़ी देन है। गास्पल के इस कथन में "जितना प्रेम अपने से करते हो उतना ही अपने पड़ोसी से करो" गाँधी जी ने इतना और जोड़ दिया है "और प्रत्येक जीवित प्राणी तुम्हारा पड़ोसी है।"

वर्ण-व्यवस्था में गांधी जी का जो विश्वास है वह यूरोपियन विचारकों को समझने के लिए और भी कठिन है। आज कल की तथा कथित सार्वजनिक सत्ता में पली हुई योरपीय जनता को गाँधी जी के यह विचार कैसे ग्राह्य होंगे यह मैं नहीं कह सकता। संभव है कि मानव के विकास के साथ-साथ वह समय आवे जब हम इतना कहना उचित समझेंगे कि गाँधी जी के वर्ण-व्यवस्था संबंधी विचार हमारे उन विचारों से एकदम मिलते हैं जिसे हम आज समझते हैं। उनका विचार वर्ण-व्यवस्था में जो उच्च नीच की बुरी भावना है उसके बिल्कुल विपरीत है। वे वर्ण-व्यवस्था का मूल आधार कर्तव्य जानते हैं।

मैं ऐसा समझता हूँ कि परम्परा का नियम अचल है और इस परम्परा के नियम को तोड़ने का कोई भी प्रयत्न बहुत ही अशान्ति का कारण होगा। वर्णाश्रम मनुष्य-स्वभाव में आवश्यक रूप से अवस्थित है। हिन्दू धर्म ने ज़रा इसे नामकरण करके प्रकाश में ला दिया है।

गांधी जी वर्णों को मानते हैं। ब्राह्मण—बौद्धिक वर्ग, क्षत्रिय—योद्धा एवं शासक वर्ग, वैश्य—व्यापारिक वर्ग, शूद्र—सेवक या मज़दूर वर्ग। यह वर्गीकरण कोई ऊँचाई या नीचाई का द्योतक नहीं है। सब अपने-अपने क्षेत्र में ऊँचे और नीचे हैं। कोई वर्ग किसी वर्ग से ऊँचा नीचा नहीं है। यह वर्गीकरण कर्तव्यों का बँटवारा करता है पर अधिकार प्रदान नहीं करता।

यह हिन्दू धर्म की आत्मा के एकदम विपरीत है कि कोई किसी विशेष वर्ग में होने के कारण अपने को ऊँचा तथा औरों को नीचा बतलावे। सभी ईश्वरीय सृष्टि की सेवा करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण अपनी योग्यता से, क्षत्रिय अपने बाहुबल एवं शासन से, वैश्य अपने धन से, और शूद्र अपने शारीरिक परिश्रम से।

इसके अर्थ यह नहीं कि ब्राह्मण कोई शारीरिक श्रम संबंधी कार्य

न करे। पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि वह प्रधानतः बुद्धि प्रधान मनुष्य है। फिर शूद्र को भी ज्ञानार्जन से रोकने का कोई कारण या तुक नहीं हो सकता। बस केवल यही अन्तर होगा कि शूद्र पहले अपने शारीरिक श्रम से समाज की सेवा जहां तक बन पड़े करे। दूसरों की बुद्धि, ज्ञान, बाहुबल, शासन एवं धन आदि से ईर्ष्या न करे। वह ब्राह्मण जो केवल ज्ञान के बल पर अपने को सर्वोच्च कहता है उसका पतन होता है और उसमें कोई ज्ञान नहीं है। वर्णाश्रम आत्म नियन्त्रण है।

इस प्रकार गांधी जी की वर्ण व्यवस्था त्याग पर आधारित है, अधिकारों पर नहीं। यह भी ध्यान देने की बात है कि हिन्दू धर्म का अवतारवाद इस विषमता को और भी सरल कर देता है क्योंकि अवतारों के द्वारा एक ब्राह्मण शूद्र हो सकता है और शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है।

गांधी जी का जो अछूतोद्धार आन्दोलन है वह उनके धार्मिक नेतृत्व का एक प्रधान अंग है। उनके विचार में अछूत ऐसा कोई शब्द हिन्दू धर्म में नहीं है।

"मैं टुकड़े-टुकड़े भले हो जाऊँ पर अपने अछूत भाइयों को छोड़ नहीं सकता। मैं फिर पैदा नहीं होना चाहता। पर यदि मैं कभी पैदा होऊँ तो मेरी इच्छा है कि मैं अछूत के रूप में पैदा होऊँ, जिससे कि मैं उनके दुःख-सुख में हिस्सा बँटा सकूँ और उनको इस दुखमय अवस्था से ऊपर उठा सकूँ।"

और उन्होंने एक छोटी सी अछूत-कन्या को गोद ले लिया है। और उसकी वे अत्यन्त भावुक रूप में चर्चा करते हैं। वह छोटी सी भोली-भाली बालिका सारे घर को अपने तोतली वाणी से प्रफुल्लित किए रहती है।

§

६

गांधी जी के महान् धार्मिक हृदय की व्याख्या हम पर्याप्त मात्रा में कर चुके हैं। गांधी टाल्सटाय से भी अधिक सरल और धार्मिक तथा आध्यात्मिक-शक्ति सम्पन्न हैं।

दोनों का यह साम्य या कदाचित् टाल्सटाय का प्रभाव पश्चिमी सभ्यता की लानत मलामत करने में प्रमुख शक्ति रहा है।

रूसो के ही समय से पश्चिमी सभ्यता की कटु समालोचना यूरोप के महान मस्तिष्कों द्वारा होती चली आई है। जब एशिया ने अपने ऊपर तथाकथित सभ्य यूरोपियनों के बंधन तोड़ने का इरादा किया तो उसे केवल कही हुई चीजें कहनी बाकी थीं। वह स्वयं यह समझ चुका था कि वह किस दर्जे तक सभ्य एवं ऊँचा है। गांधी जी ने अपने 'हिन्द स्वराज' में ऐसी किताबों की एक लिस्ट दी है जो अंगरेजों द्वारा ही लिखी गई थीं और जिन्होंने पश्चिमी सभ्यता की कटु समालोचना की थी। पर वह पुस्तक जिसका कोई प्रतिवाद हो ही नहीं सकता है वह सभ्यता के लिए युद्ध या "वार फार सिविलिज़ेशन" है जो कि प्रथम विश्व संग्राम के बाद लिखी गई थी। इसमें यूरोप इतनी दूर तक पहुँच गया कि उसने अफ्रीका और एशिया को विचार देने के लिए आमन्त्रित किया उन्होंने उसे देखा और अपने विचार प्रगट किए।

गत युद्ध ने पश्चिमी सभ्यता के शैतान की वह रूपरेखा उपस्थित की है जो कि किसी और चीज़ द्वारा स्पष्ट नहीं हो रही थी। विजेताओं द्वारा चरित्र एवं आचरण की प्रत्येक धारा तोड़ दी गई है। कोई भी असत्य कहने के लिए अधिक बुरा नहीं समझा गया। प्रत्येक अपराध के पीछे जो प्रवृत्ति है वह धार्मिक या आध्यात्मिक बिल्कुल नहीं है वरन् भौतिक है। आज यूरोप कहने-सुनने के लिए क्रिश्चियन है।

वास्तविकता तो यह है कि वह मैमन यानी धन के देवता की पूजा कर रहा है।

इस प्रकार के भाव हमेशा प्रकट किए गए हैं। भारत और जापान दोनों ने यही विचार प्रकट किया है।

पर गाँधी जी तो पश्चिमी सभ्यता के दर्शन १६१४ मे बहुत पहले कर चुके थे। २० वर्ष के आन्दोलन के जीवन में उन्हें इसका पूरा परिचय प्राप्त हो गया था। १६०८ के 'हिन्द स्वराज' में उन्होंने आधुनिक सभ्यता को एक बड़ी बुराई कहा था।

उन्होंने कहा कि सभ्यता केवल नाम की सभ्यता है। वास्तव में यह हिन्दुओं द्वारा कहे गए 'अन्ध प्रेम के तुल्य है। इसने भौतिक उन्नति ही जीवन का प्रधान ध्येय समझ रक्खा है। यह आध्यात्मिक शक्तियों की हँसी उड़ाती है। यह यूरोपियनों को पागल बनाए हुए है। यह उनसे केवल रुपयों की पूजा कराती है। पश्चिमी सभ्यता दुर्बलों और मज़दूर वर्ग के लिए अभिशाप है। यह राष्ट्र की जीवन शक्ति चूस लेती है। पर यह राक्षसी सभ्यता अपना अन्त अपने आप कर लेगी। पश्चिमी सभ्यता भारत की प्रधान-शत्रु है। यह अँगरेज़ों से भी अधिक भारत का शत्रु है क्योंकि व्यक्तिगत रूप में अँगरेज़ बुरे नहीं है। वे केवल अपनी सभ्यता से मजबूर हैं। गांधी जी अपने उन सहकारियों के विरुद्ध हैं जो भारत से अँगरेजों ही को निकाल भगाना चाहते हैं और स्वतन्त्रता के रूप में पश्चिमी राष्ट्रों ही के धरातल पर उन्नत होना चाहते हैं। उनका विचार है कि यह वैसा ही हास्यास्पद होगा जैसे किसी मनुष्य का बिना शेर के गुणों और सुविधाओं के शेर के अनुरूप बनने का प्रयत्न। भारत का ध्येय पश्चिमी सभ्यता का तिरस्कार करना ही उचित होगा।

पश्चिमी सभ्यता के अनुसार गांधी जी जन-समुदाय में तीन भेद करते हैं १ मैजिस्ट्रेट २ डाक्टर ३ अध्यापक।

गांधी जी का अध्यापकों के प्रति जो विरोध है वह बहुत न्यायसंगत है क्योंकि उन्हीं की शिक्षा के प्रभाव के कारण भारतीय अपनी वास्तविक सभ्यता भूलकर दूसरी खतरनाक और भयावह सभ्यता की धारा में बहने का निष्फल एवं हानिकर प्रयास करते हैं। अध्यापकों ने भारतीय युवकों में एक राष्ट्रीय पतन ला दिया है। पश्चिमी शिक्षक केवल दिमाग पर जोर डालते हैं वे हृदय और आचार के अंग एकदम अछूते छोड़ देते हैं। फिर वे शारीरिक परिश्रम को नीचा काम समझते हैं और इस प्रकार की शिक्षा का प्रचार उस देश में करना जहाँ ८० से ६० प्रतिशत लोग कृषक हों और केवल १० प्रतिशत शिक्षित हों एकदम सरासर पाप है।

मैजिस्ट्रेट का काम आचार-हीन है। भारत में न्यायालय अँग्रेजी सभ्यता के साम्राज्य के यन्त्र हैं। वे भारतीयों में भेद फैलाते हैं और साधारणतया वे शत्रुता का प्रचार करते हैं। वे एक बहुत ही हानिकारक पैशाचिक शोषण के समर्थक के रूप में वर्तमान हैं।

डाक्टरी पेशे के विषय में गांधी जी का कहना है कि वे पहले इसकी ओर आकृष्ट हुए पर उन्हें तुरन्त मालूम हुआ कि यह अधिक सम्मानपूर्ण नहीं है क्योंकि पश्चिमी औषधि विज्ञान केवल रोगियों को आराम देने वाला है। यह रोगों के कारण या जड़ ही को मिटाने का प्रयत्न नहीं करता और रोगों के कारण ही दुर्गुण हैं। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी औषधि विज्ञान दुर्गुणों को प्रोत्साहित करता है कि कम से कम आपत्ति के साथ बड़ा से बड़ा दुर्गुण कर सकते हो। इस प्रकार यह लोगों को चरित्रहीन कर देता है। उन्हें पश्चिमी औषधि विज्ञान की काली करतूतों द्वारा शीघ्र ही चंगा होने की पूर्ण आशा रहती है। इसके स्थान पर गांधी जी ने नियन्त्रणात्मक चिकित्सा को उत्तम समझा है। उन्होंने एक छोटा सा पैम्फलेट "गाइड टु हेल्थ" लिखा था जो उनके २० साल के अनुभव का

फल था। यह आचार शास्त्र तथा चिकित्सा शास्त्र दोनों के संयोग के रूप में है। वे कुछ ऐसे नियम बनाना जिनसे कि रोगों की उत्पत्ति ही न हो एक बहुत सरल कार्य समझते हैं क्योंकि उनकी राय में सभी रोगों का आविर्भाव लगभग एक ही कारण से होता है और वह कारण है प्राकृतिक नियमों की अवहेलना। शरीर ईश्वर का निवास स्थान है। इसे सदा स्वच्छ रखना चाहिए। गाँधी जी के दृष्टिकोण में सत्य है। पर उनका कुछ अत्यन्त उपयोगी औषधियों का तिरष्कार कुछ "अति" सा प्रतीत होता है। उनके आचार संबंधी विचार भी अधिक कठिन हैं।

७

वर्तमान सभ्यता का हृदय है मशीनरी। लोहे का युग, लोहे का हृदय। मशीन एक पैशाचिक मूर्ति हो गई है जिसकी पूजा यह बीसवीं सदी कर रही है इसका अन्त होना चाहिए। गाँधी जो स्वतन्त्र भारत में मशीनरी का विनाश चाहते हैं। मानचेस्टर की वस्तुएँ भारत ख़रीदे यह ठीक है। पर मानचेस्टर की मशीनरी भारत में स्थापित हो यह उन्हें पसन्द नहीं है। वे मशीनरी और फैक्टरियों को एक बड़ा भारी दुर्गुण समझते हैं जो मनुष्यता को गुलाम बना लेता है और पूँजीवाद को वे पाप समझते हैं।

पर भारतीय प्रगतिवादी यह कहते हैं कि यदि भारत में रेलवे, ट्राम, फैक्टरी एवं उद्योग धंधे न रहेंगे तो कैसे काम चलेगा ? इस पर गाँधी जी पूछते हैं कि क्या जब इन सब का आविष्कार नहीं हुआ था तो भारतवर्ष का अस्तित्व कहीं......चला गया था। हज़ारों वर्षों से भारतवर्ष ने अडिग होकर साम्राज्यवाद की उमड़ती हुई बाढ़ का विरोध किया था। भारत की और सब चीज़ें तो चली गईं

पर साम्राज्यवाद का विरोध करने में जो आत्म-नियंत्रण और आनन्द भारत को हज़ारों वर्ष पूर्व मिल चुका था उसे वह अब भी अनुभव कर रहा है। भारत को अन्य राष्ट्रों से कुछ सीखने की आवश्यकता नहीं है। प्राचीन युग में भारत की प्रधानता जिस हल, चरखे और ब्रह्म-ज्ञान पर निर्भर थी, अब भी उसकी प्रधानता उन्हीं वस्तुओं पर निर्भर है और उन्हीं के द्वारा वह कृषि, वाणिज्य एवं अन्य दृष्टिकोणों से सफलता प्राप्त कर सकता है। भारत को अपनी पुरानी सभ्यता फिर अपनाना चाहिए। एकदम तो नहीं पर यह धीरे-धीरे सम्भव होगा और विकास में प्रत्येक को हिस्सा बँटाना होगा।[1]

यही गाँधी जी का आधारभूत सिद्धान्त है; यह बहुत महत्वपूर्ण है और इस पर विवेचना की आवश्यकता है। यह तर्क प्रगति की उपेक्षा करता है और यूरोपीय सभ्यता का तिरस्कार करता है।[2] इस प्रकार मध्यकालीन विचार आधुनिक विकासशील सभ्यता के विरोध में है और हो सकता है कि इसके फलस्वरूप स्वयं इसी का अन्त हो जाय। पर इस प्रकार की संभावना सोचने के पहले यह कहना अधिक उचित होगा कि इस विचार द्वारा मानवता के किसी विशेष स्तर का विकास होता है। मेरा विश्वास है कि विश्व-आत्मा, अनन्त भिन्न-भिन्न आत्माओं का सम्मिश्रण है और प्रत्येक आत्मा अपने रूप में स्वतन्त्र है और अपने स्वतन्त्र गान गाती है।

किसी विशेष आत्मा या आत्मा-समुच्चय को विश्व-गान का नेतृत्व सदा नहीं मिला है। मानव-सभ्यता का इतिहास किसी एक

[1] हिन्द स्वराज।

[2] यद्यपि गाँधी जी यूरोपीय विज्ञान को अच्छा नहीं समझते पर यूरोपीय वैज्ञानिकों की तपस्या का वे बहुत आदर करते हैं और उन्हें हिन्दू आस्तिकों से बड़ा मानते हैं।

सभ्यता का इतिहास नहीं है वरन् समस्त मानव-सभ्यताओं का इतिहास है। इस प्रकार यदि किसी सभ्यता में कोई विशेष प्रगति उस समय किसी प्रकार प्रधान रही हो तो इसके अर्थ यह नहीं कि उसमें अवश्य सभी आवश्यक गुण हैं या वही प्रगति मानवता की सच्ची तथा एक-मात्र प्रगति है।

पर इन सब तर्कों को छोड़ते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि यद्यपि गाँधी जी के विचार पश्चिमी विचारों के एकदम विरुद्ध हैं फिर भी कोई भी शक्ति उनके विचारों को कम या अवनत नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त किसी अन्य दिशा में विश्वास करना, एशियाई मस्तिष्क के प्रति अज्ञानता का सूचक है। गाबिनों ने कहा है "एशिया निवासी हम लोगों से अधिक कर्मठ और अपने विश्वास पर अटल रहने वाले हैं। अपने आदर्शों की प्रतीक्षा में सदियों पड़े रह सकते हैं और जब वे आदर्श पूरे हो जायँ तो उन्हें उसमें सदियों बाद भी वही नवीनता और हर्ष अनुभव होता है। हिन्दू के लिए सदियों की गणना ही नहीं है। गाँधी जी के आदर्श यदि एक ही साल में पूरे हो जायँ तो भी उन्हें प्रसन्नता ही है। पर यदि उन्हें पूरे होने में सदियों लग जायँ तो भी वे निराश या हतोत्साह न होंगे। यदि महत्वपूर्ण सुधारों के करने में समय लगे तो गाँधी जी अधीर नहीं होंगे। वे समय की अनुकूलता का ध्यान देते हुए कार्य करेंगे। इसीलिए यद्यपि वे मशीनरी के इतने विरोधी हैं फिर भी १९२१ में उन्होंने कहा कि मैं मशीनरी की अनुपस्थिति में प्रसन्न हूँगा पर इसके लिए कोई अधीरता नहीं है। अभी तो मैं मशीनरी पर कोई विचार नहीं दे सका हूँ। पूर्ण प्रेम का सिद्धान्त मेरा प्रिय सिद्धान्त है, पर इसको राजनीतिक ढंग से प्रचार करना असफलता है। मैं जानता हूँ कि राजनीतिक प्रोपेगैण्डा से कोई विश्व-प्रेम में विश्वास करने लगे, यह असंभव है। मैं केवल आदर्शवादी नहीं वरन् व्यवहारशील

आदर्शवादी हूँ।

गाँधी जी कभी किसी से जो वह नहीं दे सकता उसे नहीं माँगते, पर जो वह दे सकता है उसे संपूर्ण रूप से माँगते हैं और भारत ऐसे देश में यह गाँधी जी पूर्ण रूप से कर सकते हैं। गाँधी जी जानते हैं कि भारत से क्या माँगना होगा और भारत गाँधी जी की सारी माँगें पूरी करने को तैयार है।

भारत और गाँधी दोनों के बीच स्वराज्य भावना प्राथमिक रूप से शासन कर रही है। "मैं जानता हूँ" गाँधी जी ने कहा "देश की इच्छा स्वराज्य की है, अहिंसा की नहीं।"

और फिर उनके होठों से आश्चर्य भरे शब्द निकलते हैं, "हिंसा द्वारा भी स्वतंत्र भारत मुझे प्रिय होगा पर अहिंसा के नाम पर गुलामी की जंजीरें होना मुझे पसन्द नहीं।"

पर फिर वे तुरन्त कहते हैं कि यह एक असंभव विचार है क्योंकि हिंसा से भारत कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। स्वराज्य केवल आत्मिक बल से प्राप्त हो सकता है। भारत का सच्चा अस्त्र यही है। "सत्य और प्रेम" इसे गाँधी जी ने सत्याग्रह का नाम दिया है, जिसकी परिभाषा है, सत्य-बल और प्रेम-बल।

गाँधी जी ने सत्याग्रह का प्रयोग, दक्षिणी अफ्रीका में अपने विचारों और "शांत विरोध" में अन्तर दिखलाने के लिए सर्वप्रथम किया था। इन दोनों के अन्तर पर अधिक ध्यान देना होगा। गाँधी जी के आदर्श को "पैसिव रेज़िस्टेन्स" कहने से अधिक और कोई ग़लती नहीं हो सकती। "पैसिव" शब्द में जो शिथिलता और अपौरुषता है वह गाँधी जी के सत्याग्रह में नहीं है। वे अनवरत स्वतन्त्रता का संग्राम करने वाले अहिंसात्मक योद्धा हैं। प्रेम, विश्वास और त्याग यह तीन वस्तुएँ सत्याग्रही में असाधारण रूप से वर्तमान होना चाहिएँ।

गाँधी जी के सत्याग्रह में कायरता का भाव नहीं है। "कायरता

से अधिक प्रिय मुझे हिंसा होगी। जहाँ कायरता और हिंसा में किसी को पसन्द करना होगा वहाँ मुझे हिंसा पसन्द होगी कायरता नहीं। अहिंसापूर्वक सत्य के लिए प्राणोत्सर्ग कर देने का साहस अपने में पैदा करना यही सत्याग्रह का आवश्यक अंग है।

सहनशक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए गांधी जी कहते हैं—"सहनशक्ति मानव जाति का चिह्न है। माता अनेक कष्ट इसलिए सहन करती जिससे कि बालक का उपकार हो। जीवन मृत्यु ही में निहित है। गेहूँ बोने का ध्येय यह है कि गेहूँ का बीज स्वयं तो नष्ट हो जाय पर अपने द्वारा एक लहलहाते सुन्दर गेहूँ के पौधे को स्थान दे जाय जो फूल फलकर संसार का उपकार करे। कोई भी देश बिना सहनशीलता की अग्नि में परिष्कृत हुए उच्च नहीं हो सका है। सहनशीलता का नियम भूल जाना असंभव है। कष्ट और सहनशीलता द्वारा ही प्रगति का मापदण्ड निर्धारित होता है। जितनी ही शुद्ध और निष्पाप रूप में सहनशीलता एवं कष्ट का व्यवहार होगा उतनी ही अधिक और स्थायी प्रगति होगी।

"अहिंसा के अर्थ हैं, सज्ञान कष्ट सहन करना। मैंने भारत के सामने प्राचीन ऋषियों का मार्ग उपस्थित किया है। आत्मत्याग और कष्ट की सहनशक्ति यही हमारे प्राचीन ऋषियों के अहिंसात्मक सिद्धान्त थे। जिन महात्माओं ने हिंसा के बीच में ऐसी हिंसा का आविर्भाव किया था वे न्यूटन आदि आविष्कारकों से कहीं अधिक बड़े थे। स्वयं हथियारों का व्यवहार जानते हुए वे उनकी व्यर्थता का भी ज्ञान रखते थे और सबको उसी दिशा में शिक्षा भी देते थे। उन्होंने मुक्ति का द्वार अहिंसा में समझा हिंसा में नहीं। अहिंसा का धर्म केवल हमें निष्क्रिय साधु ही नहीं बनाता। यह धर्म जन-साधारण के लिए भी है। हम लोगों के लिए अहिंसा ही परम धर्म है और हिंसा भी धर्म है पर पशुओं के लिए। मनुष्य की प्रतिष्ठा साधारण से किसी ऊँचे नियम के पालन

करने में है। मैं चाहता हूँ कि भारत अपनी शक्तियों में विश्वास करता हुआ भी अहिंसा का व्यवहार करे। मैं चाहता हूँ कि भारत यह समझे कि उसकी आत्मा अमर है और वह आत्मा समस्त संसार की शक्तियों को कुचलकर विजयिनी हो सकती है।"

ऊँचे दर्जे का स्वाभिमान और भारत के प्रति अनंत अनुराग यह गांधी जी को बाध्य करता है कि भारत से कहें कि वह हिंसा को घृणा की दृष्टि से देखे। अहिंसा उसका ऊँचा पद है। यदि भारत इसे त्याग देगा तो गिर जायेगा जो गांधी जी कभी सोचते नहीं हैं।

यदि भारत हिंसा को अपना धर्म बना ले तो मैं भारत में रहने की परवाह न करूँगा। मेरा देश-प्रेम धर्म-प्रेम का अनुगामी है। बिना धर्म-प्रेम के मैं देश-प्रेम नहीं कर सकता। मैं भारत से भी चिपट जाता हूँ जैसे माता के स्तन से बालक, पर इसीलिए कि मुझे मालूम है कि यहाँ मेरे विचारों का पालन-पोषण होता है। यदि भारत से मुझे अपने विचारों की पुष्टि न मिली तो मैं अपने को माताहीन बालक की भाँति अनाथ समझूंगा।[1]

[1]जेल जाने से कुछ महीने पूर्व गांधी जी ने अपने ऊपर किए गए दोषारोपण का उत्तर दिया था। उनके समालोचक, उनके द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में की गई सरकारी सेवाओं के लिए उन्हें बुरा मानते हैं। पर गांधी ने इसके उत्तर में दुहराया कि मैं अपने को ब्रिटिश सरकार का सच्चा नागरिक समझता हूँ। सरकार की निन्दा करना मैं किसी भी नागरिक के लिए उचित नहीं समझूंगा। जहाँ तक हो सकता था उन्हें ब्रिटिश सरकार की बुद्धिमानी और न्यायशीलता में विश्वास था। परन्तु अब वे गवर्नमेन्ट के अनुचित दबावों से तङ्ग आ गए थे और इसका फल गवर्नमेन्ट को भुगतना पड़ा।

§
८

गाँधी जी को भारत की सहनशक्ति में शंका नहीं है। फरवरी १९१९ को उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करने की ठानी। इसकी उपयोगिता १९१८ के कृषक-आन्दोलन में जाँची जा चुकी था।

आन्दोलन एकदम राजनैतिक नहीं है क्योंकि गाँधी जी फिर भी सरकार के शुभचिंचक हैं। और वे तब तक शुभ-चिंतक बने रहेंगे जब तक उन्हें इंगलैंड से तनिक भी शुभ-चिंतना की आशा है। जनवरी १९२० तक उन्होंने सरकार से सहयोग करने का पक्ष लिया। यद्यपि राष्ट्र-प्रेमियों ने गांधी जी की इस समय भी निन्दा की पर गांधी जी के तर्क विश्वासपूर्ण और प्रभावशाली थे और आन्दोलन के पहले साल वे इस अवस्था में थे कि लार्ड हन्टर को विश्वास देते थे कि यह आन्दोलन सरकार के विरुद्ध नहीं जायगा और विधान की पूर्णरूप से रक्षा करेगा। केवल गवर्नमेंएट की संकीर्ण कर्मठता से गाँधी जी को विवश होकर यह खैरख्वाही का नाता सरकार से तोड़ना पड़ा।

सत्याग्रह आन्दोलन ने पहले विधान का विरोध किया, गवर्नमेंएट एक अन्यायपूर्ण नियम पास करने की उत्तरदायी ठहराई गई। वे सत्याग्रही जो नियम की रक्षा सदैव करते रहे हैं, इस नियम की उपेक्षा और विरोध करेंगे क्योंकि यह अन्यायपूर्ण था। यदि गवर्नमेंट इस नियम को रद्द नहीं करती तो सत्याग्रही अन्य नियमों को भी भंग कर सकता है और अन्त में सरकार से सभी नाते तोड़ सकता है। देखने की बात है कि सत्याग्रह शब्द को भारत क्या महत्व देता है और पश्चिमी लोग ठीक उसके विपरीत तात्पर्य निकालते हैं। इसमें इतनी असाधारण धार्मिक वीरता और इतना शौर्य है।

सत्याग्रही को शक्ति-व्यवहार करने की आज्ञा नहीं थी। उसे केवल

उस शक्ति का उपयोग करना था जो उसके प्रेम द्वारा स्वतः प्रगट होती थी। वे स्वेच्छापूर्वक सभी प्रकार के दिए गए कष्टों को सहन करते थे[1]। और इस प्रकार उनमें एक ऐसी शक्ति थी जिससे ईसा मसीह ने अपने थोड़े से साथियों द्वारा रोमन राज्य को जीत लिया था।

न्याय और स्वतंत्रता के लिए आत्मत्याग और कष्ट सहन करने के लिए उद्यत सत्याग्रहियों के धार्मिक पक्ष प्रकट करने के लिए गांधी जी ने ६ अप्रैल १६१६ को प्रार्थना, उपवास और धार्मिक कृत्यों का दिन बनाया और अखिल भारतवर्षीय हड़ताल घोषित कर दी। यह पहला कदम था।

इस श्रीगणेश ने जनता के हृदय पर अधिकार जमा लिया और यह सबसे पहला मौका था कि भारत में सभी वर्ग के लोग एक हो कर सत्याग्रह में सम्मिलित हुए।

चारों ओर शान्त रही। दिल्ली के पास केवल कुछ अशान्ति हुई। गांधी जी उसे शान्त करने बढ़े। पर सरकार ने उन्हें कैद कर लिया और बम्बई वापस भेज दिया। उनके कैद होने की ख़बर से पंजाब में दंगे हो गए। अमृतसर में कुछ घर लूट लिए गए और कुछ आदमी मार डाले गए। ११ अप्रैल की रात में जनरल डायर वहाँ पहुँचा और उसने शहर पर अपनी फ़ौज से कब्ज़ा कर लिया। चारों ओर शान्ति हो गई। १५ को हिन्दुओं का एक बड़ा त्योहार था। जलियानवाला बाग़ के मैदान में एक मीटिंग हो रही थी। जनता

[1]कड़ा से कड़ा हृदय प्रेम की आग में पिघल जायगा—अगर न पिघल सके तो आग की कमज़ोरी है। (मार्च ६, १६२०) जो लोग सत्याग्रह करते थे उन्हें कांग्रेस कमेटी द्वारा अनुचित कहे गए सरकारी नियमों का विरोध करने की शिक्षा दी जाती थी, पर उन्हें अहिंसा, सत्य और प्रेम की सख्त हिदायतें दी जाती थीं।

एकदम शांत थी और उसमें अनेक औरतें और बच्चे भी थे। उसी रात को जनरल डायर ने पब्लिक मीटिंग होने पर रोक लगा दी थी। पर इस प्रकार आर्डर का ज्ञान किसी को नहीं था; नहीं तो शायद मीटिंग न होती। जनरल अपनी मशीनगनों से तैयार होकर जलियानवाला बाग़ में आया और उनसे बिना कुछ कहे सुने उसने अरक्षित जनता पर आग उगलना आरम्भ कर दिया। फ़ायर १० मिनट तक होता रहा जब तक कि सब गोलियाँ ख़तम नहीं हो गईं। वह स्थान चहारदीवारी से घिरा हुआ था इसलिए उसमें से कोई बच भी न सका। लगभग पाँच छः सौ हिन्दू मारे गए और उससे भी अधिक घायल हुए। मुर्दों और घायलों का ध्यान करने वाला कोई नहीं था। इस हत्याकाण्ड के फलस्वरूप पंजाब में मारशल ला जारी हो गया और आतंकपूर्ण शासन आरम्भ हो गया। निहत्थी जनता पर हवाई जहाज़ों से बम गिराए गए। बड़े-बड़े सम्मानीय नागरिकों को सड़कों पर घसीटा गया, उन्हें नाजायज़ तरीके पर नाना प्रकार का कष्ट पहुँचाया गया और उन पर अत्यन्त असभ्य अत्याचार किए गए। ऐसा मालूम होता था मानों अंगरेज़ शासकों पर पागलपन की हवा फिर गई हो, मानों भारत द्वारा घोषित अहिंसा-धर्म ने योरपीय हिंसा की आग भड़का दी हो। गांधी जी ने देखा कि आगे रक्तपात और कष्टों की वर्षा हो रही है। पर उन्होंने जनता को स्वच्छ सड़क पर आगे ले चलने का वचन नहीं दिया था। उन्होंने सबको चैतन्य किया था कि रास्ता खून से साफ़ करना पड़ेगा। जलियानवाला बाग़ केवल श्री-गणेश मात्र था।

"हम लोगों को स्वतंत्रता के संग्राम में केवल हजारों आदमियों के खून की ही आशा न करनी चाहिए वरन् इस संग्राम में न जाने कितने हज़ार निष्पाप वीरों का वध होगा। हमें पूर्ण आशा है कि पीड़ित जनता अधीर न होगी वरन् इसे एक साधारण-सी दिनचर्या समझेगी।"

फौजी सेन्सर की सख्ती के कारण पंजाब के अन्यायों का पता अन्य प्रान्तों को न चल पाया। पर जब इसकी खबर भारत में फैली तो असंतोष की ज्वाला फैल गई। यहाँ तक अँगरेज़ सरकार भी आशंकित हो गई। जाँच करने की आज्ञा हुई और लार्ड हन्टर ने उस जाँच कमीशन का सभापतित्व किया।

साथ-साथ नेशनल इंडियन कांग्रेस ने एक और सब-कमेटी सरकार ही की प्रणाली पर सरकार से स्वतंत्रता के रूप में जाँच करने के लिए बनाई। यह सरकार की सहायता के लिए थी जैसा कि सभी बुद्धिमान लोग समझ सकते हैं। यह इसलिए बनाई गई जिससे कि अमृतसर के हत्याकाण्ड में जितने दोषी हों उन सबको दण्ड दिया जाय। गांधी जी तो यह तक भी नहीं चाहते थे। उनकी माँग यह नहीं थी कि जनरल डायर व अन्य अफ़सरों को दण्ड दिया जाय। उनके प्रशस्त विचारों में किसी से बदला लेने की कामना नहीं थी। वे केवल यही चाहते थे कि दोषियों के दोषों को स्पष्ट दिखलाया जाय और उन्हें ऐसी दशा में रखा जाय जिससे फिर वे दोष न कर सकें। पर सरकार के जाँच-कमीशन की रिपोर्ट तैयार होने के पहले ही सरकार ने इन्डेम्नेटी ऐक्ट पास किया जिससे कि सरकारी अफसरों की रक्षा की जा सके। यद्यपि डायर को उस पद पर से हटा दिया गया पर उसे अपने हत्याकाण्ड के पारितोषिक रूप में अँगरेज़ों द्वारा व्यक्तिगत काफ़ी धन सहायतार्थ दिया गया।

पंजाब की घटना होने के बाद भारत का वायुमंडल अभी वैसे ही था कि एक और नई घटना घटी। जो कुछ विश्वास भारत को सरकार के प्रति था वह भी गवर्नमेण्ट के व्यवहार तथा दृष्टिकोण से एकदम हट गया।

योरपीय महायुद्ध द्वारा भारतीय मुसलमानों की स्थिति बहुत दुविधा की हो गई थी। उन्हें सरकार की खैरख्वाही भी करनी थी और अपने

धार्मिक नेताओं का अनुगमन भी करना था। उन्होंने वचन दिया था कि हम लोग सरकार को इस शर्त पर सहायता देंगे कि सरकार हमारे ख़लीफ़ा या सुल्तान पर आक्रमण न करें। इस शर्त के क़बूल करने पर उन्होंने सहायता दी। उन्होंने कहा कि सुल्तान तुर्किस्तान और योरप में यथावत् बना रहे और उसके अधिकार अरब के धार्मिक सभी स्थानों पर बने रहें। लायड जार्ज और वायसराय ने इसका वचन दिया। पर जब लड़ाई समाप्त हुई तो सभी प्रतिज्ञाएँ भुला दी गईं। जब १६१६ में टर्की पर शान्ति की शर्तों के लादने का समाचार फैला तो भारतीय मुसलमान अधीर हो गए और उनके असंतोष से खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ।

१७ अक्तूबर १६१६ को यह आन्दोलन आरंभ हुआ। एक विशाल जलूस निकला। एक महीने बाद २४ नवंबर को दिल्ली में एक ख़िलाफ़त कान्फरेंस हुई। गांधी जी इसके सभापति हुए। एक ही दृष्टि में गांधी जी ने यह विचार किया कि ख़िलाफ़त आन्दोलन को भारतीय एकता का माध्यम बनाया जा सकता है। भारत की असंख्य जातियों को एक करना बड़ा कठिन प्रश्न था। अंगरेजों ने हिन्दू मुसलिम झगड़े से हमेशा फ़ायदा उठाया था। गांधी जी उनको इस झगड़े के बढ़ाने का उत्तरदायी भी ठहराते हैं। कुछ भी हो अँगरेज़ों ने इन दोनों वर्गों को जो आपस में बच्चों की तरह झगड़ते थे मिलाने की चेष्टा कभी नहीं की थी।

जब गांधी जी ने हिन्दू-मुसलिम एकता की आवाज़ उठाई तो जनता में एक नया भाव पैदा हो गया। उदारता के आवेश में गाँधी जी ने यहाँ तक हिंदुओं से कहा कि तुम मुसलमानों को उनकी इच्छा के अनुसार सभी अधिकार दे दो।

अमृतसर के हत्याकाण्ड में हिन्दू और मुसलमान साथ-साथ बलिदान हुए थे। अब उन्हें एक समझौता करना बाकी था। मुसल-

मान लोग बड़े साहसी और प्रगतिशील वर्ग के थे। ख़िलाफ़त कान्फ़रेन्स में उन्होंने ज़ोरों से घोषणा की कि वे सरकार से सभी नाता तोड़ देंगे यदि उनकी माँगे पूरी न की गईं। गांधी जी ने इसका अनुमोदन किया पर उन्होंने उस समय अँगरेज़ी वस्तुओं का तत्कालीन बहिष्कार करना उचित न समझा। उन्होंने बायकाट को अपनी कमज़ोरी या बदला लेने की प्यास सोचकर उस समय इस पर उतना विचार नहीं किया। एक दूसरी ख़िलाफ़त कान्फ़रेंस दिसंबर १६१६ में अमृतसर में हुई और यह तय हुआ कि अँगरेज़ सरकार को योरप में एक डेपुटेशन भेजकर भारतीय जन-मत का परिचय कराया जाय। यह भी तय हुआ कि वायसराय को यह सूचित किया जाय कि यदि कोई असंतोषजनक शर्त सुल्तान या ख़लीफ़ा पर लादी गई तो फिर भारत में उन्हें बड़े कठिन दिन देखने पड़ेंगे। फरवरी १६२० को एक तीसरी कान्फरेंस बम्बई में हुई और एक घोषणा-पत्र निकालकर अँगरेज सरकार को आने वाले तूफान से सावधान कराया गया।

गांधी जी को पता हो गया कि तूफ़ान आने वाला है। पर उन्होंने इसको बुलाने की अपेक्षा इसकी हिंसात्मक-वृत्तियों को दबाने की यथा-शक्ति कोशिश की। ऐसा मालूम होता था मानों इंगलैण्ड भी ख़तरे का अनुभव कर रहा था। उसने कुछ नरमी का बर्ताव करके परिस्थिति को क़ाबू में लाने का प्रयत्न किया। मान्टेग्यू चेम्सफ़र्ड रिपोर्ट के आधार पर इंडियन रिफार्म ऐक्ट पास करके सरकार ने भारतीयों को केन्द्रीय सरकार में अधिक अधिकार दिए और १४ दिसंबर १६१६ की घोषणा द्वारा सम्राट् ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। उन्होंने भारतीयों से सह-योग करने की प्रार्थना की और वायसराय को सभी राजनीतिक कैदियों को छोड़ देने की आज्ञा दी। गांधी जी जैसा कि उनकी प्रकृति का गुण है शत्रुओं के भी वचनों पर विश्वास कर अब सोचने लगे कि कदाचित अँगरेज सरकार अब भारतीयों के साथ अच्छे बर्ताव करें।

उन्होंने जनता से इस सुधार को अंगीकार कर लेने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि यद्यपि ये सुधार अपर्याप्त हैं, पर इन्हें आगे आने वाली विजयों के श्रीगणेश के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। बहुत वाद-विवाद के बाद इंडियन नेशनल कांग्रेस ने उनकी राय मान ली।

पर शीघ्र ही यह मालूम होने लगा कि गाँधी जी की आशाएँ भ्रमात्मक थीं। वाइसराय ने सम्राट् के उदार विचारों का पालन नहीं किया और कैदियों को मुक्त करने के स्थान पर जेलों के दरवाजे केवल उनको अभियुक्त बनाने के लिए खोले गए। अब यह स्पष्ट हो गया कि दिए गए सुधार व्यवहार में नहीं लाए जाएँगे।

इन सबके बाद १४ मई १९२० को सुल्तान पर लादी गई संधि की वार्ता जब भारत में फैली तो असंतोष और फैल गया। वाइसराय ने एक संदेश देते हुए स्वीकार किया कि संधि की शर्तें अच्छी नहीं है; पर उन्होंने सलाह दी कि भारतीय मुसलमानों को अनिवार्य सत्यों को चुपचाप स्वीकार करना चाहिए। यह संधि इससे दूसरी नहीं बनाई जा सकती थी।

अब अमृतसर की घटनाओं की सरकारी रिपोर्ट सामने आई। ज्वाला में आहुतिस्वरूप यह अन्तिम तिनका था। भारत की राष्ट्रीय भावना जग पड़ी और सभी संबंध विछिन्न हो गए।

बम्बई में बैठी हुई ख़िलाफ़त कमेटी ने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के पक्ष में एक प्रस्ताव पास किया जिसे इलाहाबाद में हुई मुसलिम कानफरेन्स ने ३० जून १९२० को एकमत से स्वीकार किया।

उसी समय गाँधी जी ने वाइसराय के नाम खुला पत्र भेजा और सूचित किया कि असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो रहा है। उन्होंने उसमें इसके कारण भी साफ़-साफ़ लिखे। उनके तर्क पढ़ने के योग्य हैं। उनसे यह मालूम होता है कि इस समय भी गाँधी जी चाहते थे

कि सरकार से संबंध तोड़ना न पड़े तो अच्छा है। अपने हृदय में वे यह भावना लिए हुए थे कि अब भी कदाचित् सरकार अपने व्यवहारों में सुधार करे और झगड़े की नौबत न आवे।

एकमात्र रास्ता जो मेरे लिए है वह यह है कि या तो मैं सरकार से एकदम अपने संबंध तोड़ लूँ या फिर सरकार के विधान की महानता में विश्वास करते हुए विकारों का सुधार पाऊँ। मुझे अब भी अँगरेज़ सरकार के विधान की महानता के प्रति श्रद्धा है क्योंकि मैं विश्वास करता हूँ कि मैंने इसी विधान के आधार पर मुसलमानों को असहयोग करने की राय दी है और हिन्दुओं को उस असहयोग में शामिल होने की सलाह देकर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए भी विधान की रक्षा की है।

कहाँ तो देश का यह सच्चा नागरिक, और कहाँ अन्धी सरकार की मिथ्याभिमान-पूर्ण बर्बर ज्वाला!

दूसरा भाग

§

१

२८ जुलाई १६२० को गाँधी जी ने घोषित किया कि असहयोग आन्दोलन पहली अगस्त से आरम्भ हो जायगा। उसके एक दिन पहले व्रत और प्रार्थना का दिन मनाया जाय। उन्हें सरकार के हिंसा की कोई डर या परवाह नहीं थी, पर जनता की हिंसा वृत्ति से वे बहुत डरते थे। इसलिए उन्होंने आज्ञा दी कि पूर्ण रूप से शान्ति और अहिंसा का असहयोग मनाया जायगा। उन्होंने घोषित किया :—

"प्रभाव-जनक असहयोग के लिए पूर्ण-संगठन की आवश्यकता होती है, क्रोध मे संगठन में कमी आती है। इसलिए सत्याग्रही असहयोगी अपने क्रोध के गुलाम न बनें और हिंसा से हाथ खींचे रहें। हिंसा से हमारी आवाज़ दब जायगी, लाखों निष्पापों का खून होगा और शत्रु विजयी होंगे। पूर्ण नियंत्रण की आवश्यकता है।"

असहयोग की नीति का विश्लेषण गाँधी जी ने दो महीने पहले असहयोग कमेटी में किया था और उसके प्रोग्राम यों थे:—

(१) सभी उपाधियों और अवैतनिक आफ़िसों का त्याग।

(२) सरकार को ऋण देना बन्द कर देना।

(३) वकीलों का वकालत करना छोड़ देना और देहाती झगड़ों का मध्यस्थ द्वारा निबटारा कर लेना।

(४) सरकारी स्कूलों का, विद्यार्थियों और उनके माँ-बाप द्वारा बाईकाट।

(५) कौन्सिलों का बाईकाट।

(६) सरकारी पार्टियों तथा अन्य उत्सवों का बहिष्कार।
(७) किसी सिविल या मिलिटरी पद का बहिष्कार।
(८) "स्वदेशी" का प्रचार।

दूसरे शब्दों में इस प्रोग्राम की नकारात्मक धाराओं को निर्माण-कार्य का रूप देना और नए भारत का निर्माण करना।

हम लोगों को गांधी जी के इस प्रोग्राम की चतुराई और दृढ़ता की प्रशंसा करनी चाहिए। उन्होंने योरोपीय क्रान्तिकारियों की भाँति अपना आन्दोलन नहीं शुरू किया। उन्होंने (सिविल डिसओबीडियन्स) सामूहिक आज्ञाउल्लङ्घन नहीं किया। वे इसके गुण-दोषों से परिचित थे। उन्होंने इसकी चर्चा करते हुए थोरो को उद्धृत किया है। अपने असहयोग और सामूहिक आज्ञोल्लङ्घन में उन्होंने जो अन्तर बताया वह ध्यान देने योग्य है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि कानून का पालन नहीं करेंगे, वरन् इसका तात्पर्य है प्रत्येक नियम का विरोध करना। असहयोग एक बड़ी जनता द्वारा किए गए आन्दोलन के उपयुक्त था।

पहली अगस्त १९२० को गांधी जी ने वाइसराय को एक पत्र लिखते हुए आन्दोलन के श्रीगणेश की सूचना दी। उसमें उन्होंने अपनी उपाधियाँ सरकार को वापस कर दीं।

यद्यपि मुझे खेद है पर मैं आपको, आपके पहले वाइसराय द्वारा, दक्षिणी अफ्रीका में किए गए मेरे कार्यों के उपलक्ष में दिए गए 'कैसरे हिन्द' की उपाधि लौटाता हूँ। १९०६ में वालंटियर कोर के आफ़िसर इन्चार्ज रूप में कार्य करने के कारण प्राप्त 'जूलूवार मेडल' भी आपको लौटाता हूँ। और १८९९-१९०० वाली बूअर वार में वालंटियर स्ट्रेचर बियरर कोर के सुपरिन्टेन्डेन्ट के सब प्राप्त किए गए 'बूअर वार मेडल' भी आपको समर्पित करता हूँ।

उन्होंने पंजाब और ख़िलाफ़त आन्दोलन के समय में किए गए

अत्याचारों पर कटाक्ष करते हुए लिखा "मैं दिन पर दिन भद्दी से भद्दी ग़लतियाँ करती हुई सरकार के प्रति कोई भी प्रेम या आदर प्रकट करने में असमर्थ हूँ।"

गाँधी जी ने उसमें यह आशा दिखाई थी कि वाइसराय साहब अब भी अपना व्यवहार ठीक करेंगे। गाँधी जी का आदेश तुरन्त पालन किया गया। सैकड़ों न्यायाधीशों ने अपने त्यागपत्र दे दिए, हज़ारों विद्यार्थियों ने अपने कालेज छोड़ दिए। न्यायालय सूने रह गए और स्कूल खाली थे। कलकत्ता में बैठी हुई अखिल भारतीय कांग्रेस की विशेष मीटिंग ने गाँधी जी के निर्णय का बहुमत से समर्थन किया और उनके मित्र मौलाना शौकतअली ने सारे देश का दौरा किया और सर्वत्र अच्छा से अच्छा स्वागत पाया।

गाँधी जी ने अपने नेतृत्व का जो परिचय पहले वर्ष दिया वह वे कभी न दे सके थे। उन्हें सुलगती हुई हिंसाग्नि को नियंत्रित करना था। गाँधी जी भीड़ की उत्तेजना से बहुत ही अधिक डरते हैं। वे युद्ध से घृणा करते हैं, पर कैलिबन की मूर्खतापूर्ण हिंसा के विरुद्ध यदि उन्हें लड़ना पड़े तो वे लड़ भी सकते हैं। यदि भारत हिंसा द्वारा स्वतंत्र होने को है, तो उसे नियन्त्रित हिंसा का व्यवहार करना चाहिए, वह है युद्ध। भीड़ और भम्भड़ से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जायगी। गाँधी जी सभी सामूहिक मीटिंग और जलूसों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। वे नियन्त्रण पर हठपूर्वक अनुरोध करते हैं। "हम लोगों को क्रान्ति से शान्ति प्राप्त करना चाहिए" उन्होंने कहा "जनता के नियमों का व्यवहार करो, न कि भीड़ के नियम का पतन।"

गाँधी जी ने बहुत सी सलाहें दी हैं। उन्होंने कहा कि नए-नए रँगरूट वालंटियर सभाओं के संगठन में सहायता देने के लिए नियुक्त किए जायँ। केवल वे ही आगे रहें जो बहुत ही अनुभवी हों। वालंटियरों को सदैव एक आदेश-पुस्तक रखनी चाहिए। उन्हें भीड़ में

इधर-उधर बैठा देना चाहिए और उन्हें झंडियों और सीटों आदि का पूरा ज्ञान होना चाहिए जिससे सभा को वे नियन्त्रित कर सकें। राष्ट्रीय नारे निश्चित होने चाहिए और उन्हें उचित समय पर लगाना चाहिए। भीड़ को रेलवे स्टेशन पर जाने से रोकना चाहिए। उन्हें पटरी पर चलकर गाड़ियों और मुसाफ़िरों के लिए पर्याप्त स्थान छोड़ना चाहिए। छोटे बच्चे भीड़ में कभी न लाए जायँ इत्यादि ! इत्यादि !

§

२

पर यदि भीड़ उत्तेजित हो जाय तो कुछ राजनीतिज्ञ ऐसे हैं जो जन-मत ग्रहण करने के लिए उस उत्तेजना को उचित बताकर भीड़ की हिंसा-वृत्ति और तीव्र करते हैं। भारत के बहुत से अच्छे-अच्छे दिमाग़ वाले नेता यह विश्वास करते हैं कि स्वतंत्रता हिंसा से मिलेगी। राजनीतिकों का यह दल गाँधी जी के नियमों को नहीं समझता और उसके राजनीतिक महत्व से अपरिचित है। यह दल कार्य चाहता है और रण-लिप्सा से उन्मत्त है। गाँधी जी को गुमनाम ख़त मिलते हैं जिनमें यह अनुरोध किया जाता है कि अहिंसा का प्रचार बन्द कीजिए। कुछ लोग यह भी विश्वास करते हैं कि गाँधी जी की अहिंसा एक आवरण मात्र है, और जब अवसर मिले तो हिंसा से स्वराज्य की ओर बढ़ना उचित है। गाँधी जी इसका उत्तर दृढ़तापूर्वक देते हैं।[१] सुन्दर निबन्धों के क्रम में उन्होंने तलवार के नीति की निन्दा की है। हिंसा किसी धर्म का आदेश नहीं है। ईसा मसीह अहिंसात्मक विरोध के

[१] अगस्त ११ और २९, १९२०।

पूर्ण प्रतीक हैं। भगवद्गीता हिंसा का उपदेश नहीं देती क्योंकि मनुष्य अपनी इच्छा से सृजन नहीं कर सकता इसलिए उसे छोटे से छोटे प्राणी के मारने का भी अधिकार नहीं है।[1] किसी के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए। यहाँ तक कि बुरा काम करने वालों को भी घृणा और द्वेष से न देखना चाहिए। पर इसके अर्थ यह नहीं कि बुराई को सहन करना चाहिए ; कदापि नहीं। यदि डायर कभी बीमार पड़ें तो गाँधी जी उनकी सेवा करेंगे, पर यदि उन्हीं का लड़का लज्जाजनक जीवन व्यतीत करने लगे तो वे उसकी रक्षा या सहायता न करेंगे। इसके विपरीत "मेरा उसके प्रति प्रेम, मुझे सभी सहायताओं से खींच लेने पर बाध्य करेगा, चाहे इसके कारण उसकी मृत्यु भी क्यों न हो जाय।" कोई किसी को अच्छा बनाने के लिए उस पर शारीरिक शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। पर उसको त्यागकर उसका विरोध करना कर्तव्य है, चाहे उसके बाद कुछ भी हो, और यदि वह पश्चाताप करे तो उसे गले लगाना चाहिए।

हिंसात्मक प्रवृत्तियों को कुचलने के साथ-साथ गाँधी जी लोगों की हिचक और अनिश्चय बढ़ा देते हैं। इसलिए उन्होंने उन लोगों को जो कुछ भी निश्चय नहीं कर सकते हैं, यों कहा:—

इस संसार में बिना सीधी कार्यवाही के कोई भी काम नहीं हुआ है। मैंने "अक्रिय विरोध" को इसीलिए अस्वीकार किया कि उसमें कमी और शिथिलता है।......फिर यह केवल सीधी कार्यवाही का असर था कि दक्षिणी अफ्रीका में जनरल स्मट्स के दिमाग़ दुरुस्त हो गए। बुद्ध और ईशू मसीह ने किस सिद्धान्त की शिक्षा दी थी—वह है सौजन्य और प्रेम। बुद्ध ने निर्भय होकर शत्रुओं के दल में अपना युद्ध कायम रखा और एक दुरभिमानी पौरोहित्य को अवनत किया। ईसा ने

[1] कम से कम गाँधी जी तो यही विचार रखते हैं।

जेरुसलम के गिरजे से दुष्ट पादरियो का पतन कराकर शांति का संदेश सुनाया। दोनों ने सीधी कार्यवाही की। पर बुद्ध और ईसा ने भी अपने होश हवास में अपने प्रत्येक कार्य के पीछे प्रेम और सौजन्य को नींव बना रखी थी।

गाँधी जी अँगरेज़ों की उदारता और बुद्धि पर विश्वासपूर्वक असर डालते हैं। वे अँगरेज़ों को अपना प्रिय मित्र कहते हैं, और कहते हैं कि वे उनके ३० वर्ष के स्वामिभक्त संगी रहे हैं। वे कहते हैं कि अपनी गवर्नमेण्ट की नीति में परिवर्तन लाओ—हमें तुम्हारी नीयत पर अविश्वास हो रहा है। पर फिर भी वे अँगरेज़ों की बहादुरी पर विश्वास करते हैं और उन्हें विश्वास है कि अँगरेज़ लोग दूसरों की वीरता का भी आदर करते हैं। "भारत के लिए समरभूमि की वीरता तो असम्भव है पर आध्यात्मिक वीरता का ही मार्ग हम लोगों के लिए खुला है। असहयोग का तात्पर्य है अपने को आत्म-त्याग मे निपुण बनाना। इसके अतिरिक्त इसका और कोई तात्पर्य नहीं है। हम अपने कष्टों द्वारा तुम्हें जीतने की आशा करते हैं।"

आरम्भ के पहले चार-पाँच महीनों तक गाँधी जी अपने असहयोग से सरकार को एकदम ही निर्जीव कर देना नहीं चाहते थे। उनका विचार था एक नए भारत के निर्माण का जो आर्थिक आदि सभी दृष्टि से स्वतंत्र हो। गाँधी जी अपने यह आर्थिक स्वतंत्रता के विचार "स्वदेशी" शब्द से व्यक्त करते हैं और वे इस स्वदेशी शब्द को इसके व्यावहारिक अर्थ ही में प्रयोग करते हैं।

भारत को सुख का त्याग और दुःखों का आलिंगन करना सीखना चाहिए। कैसा सच्चा नियंत्रण है। इससे भारत के स्वास्थ्य और आचरण दोनों पर प्रभाव पड़ेगा। गाँधी जी का पहला ध्येय है भारत को मदिरा-पान से छुटकारा दिलाना। यूरोपीय शराबों का अवश्य बहिष्कार होना चाहिए। शराब बेचने वालों को अपने लाइ-

लैंस सरकार को लौटा देने चाहिए।[१] महात्मा जी के अनुरोध का संपूर्ण भारत ने अक्षरशः पालन किया। इसका इतना प्रभाव पड़ा कि अन्त में स्वयं गाँधी जी को उत्तेजित जनता को, शराब बेचने वालों की दूकानें लूटने आदि से रोकना पड़ा। "दूसरों को अच्छा बनाने के लिए तुम्हें उन्हें शारीरिक बल दिखाकर बाध्य न करना चाहिए" उन्होंने कहा।

पर यदि शराब की लत को भारत से हटाना कुछ आसान था, तो भारत को निर्वाह के लिए प्रबन्ध करना बहुत कठिन था। यदि इँगलैण्ड से भारत का नाता एकदम टूट गया तो भारत कैसे निर्वाह करेगा! यदि यूरोपीय वस्त्रों का बहिष्कार कर दिया गया तो भारत क्या पहनेगा? गाँधी जी का उत्तर बहुत साधारण और सीधा है। उन्होंने प्राचीन चरखे के उद्योग को स्थापित करके इस समस्या को हल करने का निश्चय किया।

स्वाभाविक था कि गाँधी जी के इस निश्चय की हँसी उड़ाई जाती।[२] पर भारतीय स्थिति और गाँधी जी के चरखा संबंधी विचारों की विवेचना करने पर इसमें गम्भीरता मालूम पड़ती है। गाँधी जी ने यह कभी नहीं कहा कि केवल सूत कातने से सारे भारत का पोषण हो सकता है। पर यह वे अवश्य कहते हैं कि

[१]अपरैल २८, १९२० जून ८, सितंबर १, १९२१ "पारसियों को पत्र" नामक लेख में गांधी जी ने उनसे शराब बेचना बन्द करने को कहा था। नरम दल वालों को संबोधित करते हुए उन्होंने उनसे इस कार्य में सहयोग करने को कहा था।

[२] गांधी जी स्वयं जानते थे कि इस पर हँसी उड़ाई जायगी, पर उन्होंने पूछा कि क्या सिविंग मशीन के होने से, सुई की ज़रूरत ख़तम हो गई, चरखे की उपयोगिता ख़तम नहीं हो गई वरन् सत्य तो यों है कि इसी के द्वारा भारत का आर्थिक कल्याण है।

जब खेती के काम से फ़ुरसत रहती है तो यह चरखा उनके समय का अच्छा उपयोग करा सकता है। भारत का प्रश्न एक सच्चा और महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारत की ८० प्रतिशत जनता कृषक है। इसलिए लगभग ४ महीने बिना किसी काम के लोग खाली पड़े रहते हैं। लगभग १०ॱआबादी अकालग्रस्त रहती है। मध्यवर्ग की संकीर्णता रहती है। इँगलैण्ड ने इस दशा के सुधार करने के लिए क्या किया? कुछ नहीं। इसके विपरीत इसने उन्हें और बढ़ा दिया है। अँगरेज़ी मिलों की उत्पन्न वस्तुओं से देशी उद्योग धन्धे कुचल दिये गये हैं। स्थानीय उद्योग धन्धों द्वारा भारत के प्राकृतिक ऐश्वर्य को चूस लिया गया है। भारत के उपयोग भर के लिए रूई भारत में स्वयं उत्पन्न होती है, पर उसे रूई बाहर जापान और लंकाशायर भेजने पर वाध्य किया जाता है। उसके बदले में उसे धोखे की विदेशी चीज़ें खरीदने पर वाध्य होना पड़ता है। इसलिए सब से पहले जो कुछ भारत को आवश्यक है वह है विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार करके भी आत्म-निर्भर रहने की कला। थोड़ा भी समय बरबाद नहीं किया जा सकता और थोड़े से समय में जो सबसे पहली तैयारी भारत कर सकता है वह है सूत कातने की तैयारी। इसका तात्पर्य मोटे ताज़े ज़मीदारों को चर्खा कातने पर वाध्य करना नहीं है वरन् बेकार ग़रीबों की जीविका का साधन उपस्थित करना है। इसलिए गांधी जी ने तीन आज्ञाएँ निकाली (१) विदेशी माल का बायकाट (२) चर्खा प्रचार (३) स्वदेशी ही खरीदने का प्रचार।

गांधी जी अथक रूप से इन कार्यों में लग गए। वे कहते हैं सूत कातना सारे भारतवर्ष का धर्म है। वे चाहते हैं कि ग़रीब विद्यार्थी अपने बेकार समय में सूत कातकर अपनी फ़ीस दाख़िल किया करें। वे चाहते हैं कि प्रत्येक स्त्री पुरुष कम से कम १ घण्टा सूत कातने के कार्य में लगावे। जिस समय वे चर्खे की ध्वनि का वर्णन करने लगते

हैं उस समय मानों वे संगीतमय हो जाते हैं। इसी ध्वनि में कबीर ने आनन्द लिया था और शाहंशाह औरंगज़ेब भी यही ध्वनि पसन्द करके अपनी टोपियाँ अपने आप सिया करता था।

गाँधी जी के शब्दों का प्रभाव जनता पर पर्याप्त रूप से पड़ा। बम्बई की प्रतिष्ठित महिलाओं ने चर्खा कातना आरम्भ कर दिया। हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकार की स्त्रियों ने केवल स्वदेशी धारण करने का निश्चय किया। टैगोर ने भी इस खद्दर या खादी की प्रशंसा की। खादी के लिए आर्डर आने लगे। कुछ आर्डर तो अदन तथा बलूचिस्तान तक से आए।

पर स्वदेशी के पुजारी थोड़ा और आगे बढ़े। वे अब विदेशी का बायकाट करने लगे। यहां तक कि गांधी जी भी बायकाट में सम्मिलित हो चले। उन्होंने बंबई में तमाम विदेशी वस्त्रों को जला देने की आज्ञा दे दी। फलस्वरूप कपड़ों की एक बहुत बड़ी ढेरी जलकर राख हो गई। इस संबंध में एक विशाल बुद्धि अँगरेज़ सी० एफ० ऐन्ड्रूज़ ने महात्मा के पास एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने महात्मा की बड़ी प्रशंसा लिखी थी, पर आश्चर्य किया था कि इतने बहुमूल्य कपड़े जला क्यों दिए गये ग़रीबों में क्यों न बाँट दिए गए। वे स्वयं गांधी जी के आन्दोलन के पक्ष में थे और स्वयं भी खादी या खद्दर पहनते थे। पर इस घटना से उनके मन में महात्मा जी के प्रति संदेह उत्पन्न हो गया।

ऐन्ड्रूज़ के पत्र को 'यंगइंडिया' में छापते हुए गाँधी जी ने लिखा कि इस विषय में उन्हें कोई खेद नहीं प्रकट करना है। उन्हें किसी जाति से कोई द्वेष नहीं है। वे केवल उन वस्तुओं का विनाश चाहते थे जो भारत के लिए हानिकारक थीं। करोड़ों भारतवासी अँगरेज़ी मिलों द्वारा बरबाद हो चुके। भारतीय उद्योग धन्धों का विनाश हो चुका है जिससे हज़ारों की तादाद में लोग क्षुधित हैं और उनकी स्त्रियां वेश्या-वृत्ति कर रही हैं। भारत अपने अँगरेज़ शासकों को वैसे ही

घृणा करने लगा है। पर मैं इस घृणा एवं द्वेष को बढ़ाना नहीं चाहता। इसके विपरीत मैं इसकी धारा मनुष्यों से पलटकर वस्तुओं पर लाना चाहता हूँ। वे भारतीय जो विदेशी वस्तुओं को ख़रीदते हैं उतने ही दोषी हैं जितने इनके बेचने वाले अँगरेज़। वे कपड़े इँगलैण्ड के प्रति घृणा प्रदर्शित करने के लिए नहीं जलाए गए वरन् अतीत से पूर्ण संबंध विच्छेद प्रकट करने के लिए जलाए गए हैं। और इन विषैली वस्तुओं को ग़रीबों में बाँटना भी उचित नहीं था क्योंकि ग़रीबों में भी मर्यादा की भावना विद्यमान होती है।

§

३

सबसे पहले भारत के आर्थिक जीवन को विदेशों के प्रभुत्व से छुटकारा दिलाना था। पर अब दूसरा कार्य था भारत के मस्तिष्क को स्वतंत्र करके एक सी राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करना। गाँधी जी चाहते हैं कि उनके देशवासी विदेशी सभ्यता की गुलामी छोड़ दें और उनकी सफलता की सबसे प्रबल पृष्ठभूमि है एक ऐसी शिक्षा का प्रचार करना जो सच्चे रूप में भारतीय हो।

अँगरेज़ी राज्य के कारण प्राचीन भारतीय सभ्यता की प्रतिभा सभी कालिजों और यूनिवर्सिटियों में मन्द पड़ रही थी। लगभग ४५ वर्षों से अलीगढ़ की यूनिवर्सिटी मुसलमान सभ्यता का केन्द्र बनी हुई है। खालसा कालेज सिख सभ्यता का केन्द्र बना हुआ है तथा बनारस की हिन्दू यूनिवर्सिटी हिन्दुओं की यूनिवर्सिटी बनी हुई है। पर ये संस्थाएँ आज मध्यकालीन मालूम पड़ती हैं और अधिकांश सरकारी सहायता पर निर्भर थीं। गाँधी जी कोई नई संस्था ऐसी चाहते हैं जो स्वतंत्र हो और भारत की सभ्यता का पूर्व प्रतीक हो। १९२०

नवंबर को गाँधी जी ने अहमदाबाद में नेशलन यूनिवर्सिटी आफ गुजरात स्थापित की। हिन्दुओं का हिन्दू धर्म और मुसलमानों का इस्लाम, दोनों पर ही यह यूनिवर्सिटी आधारित थी। इसका ध्येय भारत की भाषाओं की रक्षा करके उन्हें राष्ट्रीय भावना का स्रोत बनाना था। गाँधी जी को पूर्ण विश्वास था कि "भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अध्ययन पश्चिमी विज्ञान के अध्ययन से कम आवश्यक नहीं था। संस्कृत, अरबी, फारसी, प्राकृत, पाली और मागधी के विस्तृत कोष का पूर्ण अध्ययन करने के बाद ही राष्ट्र की वास्तविक शक्ति का पता चल सकता है। इसका तात्पर्य उन्हीं पुरानी भाषाओं का पालन पोषण-मात्र नहीं है वरन् इसका अर्थ है उन प्राचीन अनुभवों तथा परम्पराओं के आधार पर एक नई भारतीय सभ्यता की सृष्टि करना। भारत में जितनी सभ्यताएँ आई उन सबको एक दूसरे के अनुकूल बनाकर, उनमें से कोई एक सर्व-मान्य सभ्यता उत्पन्न करना ही इसका ध्येय है। यह नई सभ्यता स्वभावतः स्वदेशी ढंग में होगी जिसमें कि प्रत्येक सभ्यता को अपना उचित स्थान मिलेगा और कोई एक अकेली सभ्यता किसी दूसरी सभ्यता पर हस्तक्षेप या अधिकार न जमावेगी। हिदुओं को भी कुरान अध्ययन करने का अवसर मिलेगा और मुसलमानों को शास्त्र। राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में यही सभी ध्येय और उद्देश्य हैं और किसी को भी आवाज़ को स्थान देना अस्वीकार नहीं है। यह विश्व विद्यालय विश्वास करता है कि संसार में अछूत नाम की कोई वस्तु नहीं है। स्वतंत्रता की भावना इसमें कूट-कूटकर भरी हुई है।

गाँधी जी शीघ्र ही अन्य शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने की आशा करते हैं जिनकी शिक्षा सभी को सुलभ हो सके और इस प्रकार शिक्षित और अशिक्षित में जो भयंकर भेद है वह मिट जाय।

योरपीय शिक्षालयों की परिपाटी के विरोध में, जिसमें कि शारी-

रिक श्रम को असभ्यता की श्रेणी में रखा जाता है, गाँधी जी चाहते हैं कि भारत की छोटी से बड़ी सभी शिक्षा-संस्थाओं में शारीरिक-श्रम कोर्स में रख दिया जाय। यदि विद्यार्थी अपनी फीस चरखा कातकर दें तो इस प्रकार उन्हें कमाकर अपने को स्वतंत्र समझने का अवसर मिलेगा। आचार संबंधी शिक्षा, जिसकी कि पश्चिमी शिक्षालय पूरी उपेक्षा करते हैं, भी गाँधी जी के मतानुसार आवश्यक है। पर इसकी शिक्षा देने के पहले इसके शिक्षक तैयार करने आवश्यक होंगे।

गांधी जी की योजना में ऊँची शिक्षा संस्थाओं का काम होगा आचार के शिक्षक तैयार करना। इन शिक्षालयों द्वारा भारतीय सभ्यता पूर्ण रूप से विकास प्राप्त करे और संसार में भारतीय सभ्यता का बिगुल बजा दे।

अहमदाबाद में स्थापित सत्याग्रह आश्रम या नियम-नियन्त्रण के स्कूल में शिक्षकों को ही तैयार किया जाता है। ये यहाँ पर धर्म पूर्वक सत्य और अहिंसा का व्रत लेते हैं। इनके प्रण निम्नलिखित हैं।

१. सत्य का व्रत। देश की भलाई के लिए झूठ न बोलेंगे।

२. अहिंसा का व्रत। जिन्हें हम अन्यायी समझते हैं, उन्हें भी आघात न पहुँचावेंगे। उन्हें हम प्रेम से जीतेंगे। उनकी इच्छा का विरोध हम मृत्यु-यंत्रणा सहन करके भी करेंगे।

३. ब्रह्मचर्य व्रत—बिना इसके उपर्युक्त दोनों व्रत नहीं हो सकते। पाशविक वृत्तियों को नियन्त्रित करना ही परम धर्म है। यदि कोई विवाहित भी हो जाय तो अपनी पत्नी को अपनी जीवन संगिनी समझे और उससे शुद्धता एवं पवित्रता का सम्बन्ध बनाए रखे।

४. आहार और व्रत शुद्ध, परिमित एवं नियंत्रित होगा। उत्तेजक वस्तुओं का खान पान नहीं करेंगे।

५. अस्तेय व्रत—हम किसी दूसरे की वस्तु चुराएँगे नहीं। प्रकृति

हमें हमारी नित्य प्रति की आवश्यकताओं से संपन्न रखती है। उसके अतिरिक्त हम और कोई इच्छा नहीं करेंगे जो हमारे पास नहीं है और दूसरों के पास है उसे हम चुराएँगे नहीं।

६. त्याग-व्रत। हम संग्रहशील होकर जीवन को पेचीदा एवं भार-स्वरूप नहीं बनावेंगे। हम जीवन को सरल बनावेंगे। अधिक रखने की चेष्टा न करेंगे। दैनिक जीवन में अनावश्यक वस्तुओं का त्याग करेंगे।

इन प्रधान व्रतों के अतिरिक्त भी दो एक नियम और भी हैं। जो यों हैं।

१. स्वदेशी :—धोखे की किसी चीज़ का उपयोग मत करो। विदेशी मिलों की बनी चीज़ों का प्रयोग मत करो। मिलें मजदूर के शोषण द्वारा अवस्थित हैं अतः उनके द्वारा बनी हुई वस्तुओं का व्यवहार पाप हैं। भारत ही में बने हुए साधारण वस्त्रों का प्रयोग करो।

२. निर्भीकता :—जो भय द्वारा प्रभावित होता है वह अहिंसा या सत्य का अनुगमन कभी नहीं कर सकता। एक अहिंसा-प्रेमी सत्याग्रही को राजा, प्रजा, चोर, डाकू, हिंस्र पशु इत्यादि सभी के भय से विहीन होना चाहिए। एक निर्भीक मनुष्य ही अपने और अपने देश को सत्य और आत्मा की शक्ति द्वारा स्वतंत्र कर सकता है।

गांधी जी की शिक्षा है कि इस प्रकार से ट्रेनिंग पाए हुए शिक्षक गण शारीरिक परिश्रम का उदाहरण रखें।

और जो लड़के इसमें भरती किए जाते हैं वे सभी चार बरस की ऊपर की उमर के होते हैं। उन्हें इस वर्ण आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के लिए रहना पड़ता है। उनके माँ-बाप उनके संबंध में अपने सारे अधिकार त्याग कर देते हैं। उन्हें घर भी नहीं जाने दिया जाता और माता-पिता से भी पृथक रखा जाता है। वे साधारण कपड़े पहनते हैं और साधारण शाकाहार करते हैं। उन्हें हफ़्ते में डेढ़ दिन की छुट्टी मिलती है जिसमें वे अपनी

रुचि के अनुसार कोई भी वस्तु निर्माण कर सकते है। वर्ष में तीन महीने भारत के देहातों में पैदल भ्रमण में व्यतीत होते हैं। सभी को हिन्दी और द्राविड़ भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। उन्हें अँगरेज़ी मे भी परिचय प्राप्त करना होता है। और पाँच मुख्य भारतीय भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं—उर्दू, बंगाली, तामिल, तेलगू और देवनागरी। उन्हें उन्हीं की बोलचाल में इतिहास, भूगोल, गणित और अर्थ-शास्त्र पढ़ाया जाता है। साथ ही साथ उन्हें कृषि और चरखा कातना भी सिखाया जाता है। सारी शिक्षा में एक धार्मिक वातावरण का प्राधान्य रहता है। जब शिक्षा संपूर्ण हो जाती है तो लड़कों को घर लौट जाने, या देश-सेवा व्रत लेने दोनों में कुछ भी अंगीकार करने की स्वतंत्रता रहती है। शिक्षा एकदम निःशुल्क होती है।

मैंने गांधी जी की शिक्षा-प्रणाली का अपेक्षाकृत विस्तार-पूर्वक वर्णन किया क्योंकि इसके द्वारा उनकी प्रबल आत्मिक शक्ति प्रकट होती है। गांधी जी हमारे पश्चिमी क्रान्तिकारियों की तरह नियम और आर्डिनेन्स ही नहीं बनाते वरन् संपूर्ण मानवता की सृष्टि करते हैं।

§

४

सभी सरकारों की तरह ब्रिटिश सरकार को यह बिलकुल पता नहीं है कि भारत में क्या हो रहा है। पहले तो इसका व्यवहार एकदम अवहेलनापूर्ण और घृणायुक्त था। अगस्त १९२० में वायसराय लार्ड चेम्सफ़ोर्ड ने इस आन्दोलन को "मूर्खतापूर्ण योजनाएँ और सबसे बड़ी मूर्खता" कहकर संबोधित किया था पर थोड़े ही दिनों में सरकार को यह नीति त्यागनी पड़ी। नवंबर १९२० में सरकार की ओर से

एक धमकी तथा सलाह मिश्रित घोषणा निकली कि यद्यपि हिंसा का प्रचार न करने के कारण नेताओं को कोई विशेष कष्ट नहीं दिया जा रहा है पर यदि कोई भी सीमा के बाहर पैर रखेगा या हिंसा प्रचार किसी भी रूप में करेगा तो उसे बन्दी बना कर यातनाएँ दी जाएँगी।

सीमाओं का अतिक्रमण शीघ्र ही हुआ पर सरकार की ओर से असहयोग आन्दोलन बढ़ रहा था। दिसंबर में स्थिति नाजुक हो गई। तब तक अहिंसापूर्ण असहयोग केवल एक प्रयोग के रूप में माना जाता था। सरकार भी इधर बहुत गंभीर या चिंतित नहीं थी। उसे विश्वास था कि आगामी कांग्रेस के नागपूर अधिवेशन में इसके विरुद्ध प्रस्ताव पास हो जायगा। पर ऐसा होने के विपरीत कांग्रेस ने विधान का तात्पर्य इस प्रकार लगाया :—

"इंडियन नेशनल कांग्रेस का ध्येय स्वराज या होमरूल प्राप्त करना है। इसके लिए हम सभी प्रकार के उचित तथा न्यायसंगत साधनों को प्रयोग में लाएँगे।"

इसके बाद कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन का समर्थन किया और इसको और भी सुचारु रूप से चलाने की योजना बनाई। अहिंसा का नियम पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया। एकता का सिद्धान्त विचार मे लाया गया। केवल हिन्दू-मुसलिम एकता का ही प्रयत्न नहीं किया गया वरन् अछूत हिन्दुओं को भी आन्दोलन में एक संगठित शक्ति के रूप में कार्य बढ़ाने का अवसर देने का निश्चय हुआ। इसके पश्चात् कांग्रेस विधान में कुछ आधारभूत परिवर्तन हुए जिसके द्वारा भारत के प्रतिनिधि-प्रणाली द्वारा शासन का प्रतिपादन हुआ।[1]

[1] कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में लगभग ४७२६ डेलीगेट उपस्थित थे। उनमें ४६६ मुस्लिम, ६५ सिख, ५ पारसी, २ अछूत, ४०७६ हिन्दू और १०६ स्त्रियाँ थीं।

कांग्रेस ने यह बात नहीं छिपाई कि वर्तमान आन्दोलन केवल उस असहयोग की श्रेणी है जिसमें हम सारे भारत का सारा संबंध इंगलैण्ड से तोड़ लेंगे और यहाँ तक कि राजकर भी देना बन्द कर देंगे। रास्ता तैयार करने के लिए बायकाट को और भी ज़ोर-शोर से करने का निश्चय हुआ। चरखे के उद्योग में और प्रगति दी गई। सभी

नए विधान द्वारा यह निश्चित हुआ कि प्रति पाँच हज़ार निवासियों के लिए एक डेलीगेट चुना जाय जिससे कि सब डेलीगेटों की संख्या ६१७५ हो जाय। इंडियन नेशनल कांग्रेस की बैठक प्रति वर्ष (क्रिसमस) बड़े दिन के आस पास होना निश्चित हुआ। सदस्यों की एक कांग्रेस एक्जीक्यूटिव कमेटी बनी जिसका काम था—कांग्रेस के प्रस्तावों पर अमल करना। कांग्रेस की बैठक के समय कमेटी के वही अधिकार माने गए जो कांग्रेस के थे। कमेटी में भी १५ आदमियों का एक और बोर्ड बना जिसके कार्य भी उसी प्रकार हैं जैसे पार्लियामेण्ट में कैबिनेट का कार्य। कांग्रेस कमेटी इस बोर्ड को भंग कर सकती थी।

नागपुर कांग्रेस में अन्य अनेक प्रतिनिधि कमेटियाँ बनीं जो कि २१ सूबों और १२ भाषाओं द्वारा निर्वाचित हुईं, और उनके आधीन अन्य स्थानीय ग्राम या नगर कमेटियाँ बनीं। इसी समय राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं का एक दल भी बना जिसको कांग्रेस आर्थिक रूप से संचालित करती थी। इस फण्ड का नाम था "आल इण्डिया तिलक मेमोरियल फण्ड।" यदि उसने विधान को स्वीकार करने का हस्ताक्षर कर दिया हो तो चार आना तक की हैसियत के प्रत्येक नर-नारी को वोट का अधिकार दिया गया। जो भी २१ वर्ष से ऊपर है और जिसने भी विधान की धारा १ में विश्वास प्रकट किया हो तथा उसके नियमों और उपनियमों का पालन किया हो, उन सब को निर्वाचित होने का अधिकार दिया गया।

विद्यार्थियों, मास्टरों अभिभावकों और मैजिस्ट्रेटों के पास आग्रह भेजा गया कि वे पूर्ण असहयोग का पालन करें। जो लोग काँग्रेस के नियमानुकूल नहीं चल रहे थे उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया।

काँग्रेस के प्रस्ताव का तात्पर्य था कि एक सरकार में दूसरी सरकार का कायम करना। शुद्ध भारतीय शासन द्वारा ब्रिटिश शासन को स्थानान्तरित करना। इँगलैण्ड इसे सहन नहीं कर सका या तो वह इसके विरुद्ध लड़ता या समझौता करता; ये दो ही रास्ते थे। यदि सरकार समझौता चाहती तो थोड़े ही में समझौता हो जाता। कांग्रेस ने घोषित किया कि हम यदि संभव हुआ ब्रिटिश सरकार के साथ-साथ अपने ध्येय को पूर्ण करेंगे पर यदि न हो सका तो हम बिना उसके भी पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। पर जैसा उन सभी मौकों पर होता है जब कोई यूरोपीय शक्ति किसी विदेशी जाति के प्रति विरोध में आती है, कोई भी समझौता ब्रिटिश सरकार करने पर तैयार न हुई। शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा। बल की बर्बरता का प्रयोग करने के लिए बहाने ढूँढ़े जाने लगे और बहाने सर्वत्र मिल सकते हैं।

गांधी जी द्वारा अहिंसा के सिद्धान्तों के प्रचार के होते हुए भी भारत जैसे विशाल महाद्वीप में एकाध जगह दंगे हो गए। यह सत्य है कि उनका असहयोग आन्दोलन से कोई संबंध नहीं था पर फिर भी उनसे कुछ तो अशान्ति हुई थी। संयुक्त प्रान्त में कुछ किसानों ने अपने जमींदारों के विरुद्ध सिर उठाया और पुलिस को स्थिति सँभालने के लिए जाना पड़ा। इसमें कुछ रक्तपात भी हुआ। थोड़े ही दिनों बाद सिखों के अकाली दल ने जो कि प्रधानतः पूर्ण रूप से एक धार्मिक संस्था थी असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इसके फलस्वरूप २६२१२०० सिखों का घृणित बधकर दिया गया। कोई भी ईमानदार व्यक्ति सिखों के इस आन्दोलन को गांधी जी से संबंधित नहीं कह सकता था। पर सरकार को अवसर मिल गया। मार्च १६२१ का दमन आरम्भ हुआ।

जैसे-जैसे समय बीतता गया यह दमन और प्रबल होता गया। सरकार ने कहा कि भीड़ की उत्तेजना से शराब बेचने वालों को बचाने के लिए दमन आवश्यक है। योरपीय सभ्यता और मदिरा हाथ में हाथ मिलाए चल रही थी। बोलशेविक असहयोग संगठन गैर कानूनी करार दिया गया। सभा तथा मीटिंगें गैर कानूनी करार दी गईं। पुलिस की बर्बरता बढ़ चली। सहस्रों भारतीय पकड़कर जेल में ठूँस दिए गए। कुछेक बहुत ही सम्माननीय व्यक्तियों को भी जेलों में ठूँसकर बर्बर यातनाएँ दी गईं। स्वभावतः इस कार्यवाही से लोगों में विरुद्ध भावनाएँ भर उठीं। जहां-तहां जनता और कान्सटेबलों में मुठभेड़ हो गई। कुछ घर जला दिए गए और कुछ लोगों को चोटें आईं। भारत की यह दशा थी जब कांग्रेस की बैठक बेजवाड़ा में परिस्थिति पर विचार करने को बैठी। कांग्रेस ने आश्चर्यजनक रूप में इसका विरोध किया और कहा कि देश अभी इस दुधारी तलवार के योग्य नहीं है। सिविल डिसओबिडियेन्स बाद में संगठित किया जायगा।

उधर गांधी जी अपना आन्दोलन अधिक से अधिक उत्साह और शांति के साथ संचालित कर रहे थे। उन्होंने सभी धर्म और वर्ग को एक करने का प्रयत्न किया। हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक घृणा को दूर करने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। अछूतों के उद्धार के लिए भी काफी प्रयत्न किया।[1]

[1]गाँधी जी ने इस विषय पर अपना व्यक्तिगत विचार मौलाना मुहम्मद अली की और अपनी मित्रता से प्रगट किया है।

उन्होंने अपनी बेटी का ब्याह मौलाना के लड़कों में नहीं किया और न उनके साथ खाना ही खाया और न वे यह आवश्यक ही समझते थे। वे कहते थे कि हम दोनों अपने अपने विश्वास पर अटल हैं फिर भी हम मित्र हैं।

अछूतोद्धार के आन्दोलन में उन्होंने बहुत बड़ा भाग लिया। अछूतों के प्रति उनकी सहानुभूति बपचन ही से है। बचपन में उन्हें समझाया जाता था कि अछूतों को मत छुओ तो उनकी समझ में न आता था कि क्यों न छुएँ। स्कूल में वे अक्सर अछूतों को छुआ करते थे तो उनकी माँ कहा करती थीं कि अछूतों के छूने का पाप मुसलमानों के छूने पर ही दूर हो सकता है। गाँधी जी को यह सब अन्यायपूर्ण प्रतीत होता था। १२ वर्ष की अवस्था में उन्होंने इस भयंकर भेद-भाव को मिटा देने की प्रतिज्ञा की। अब गाँधी जी अछूतोद्धार में तन-मन धन से लग गए। उन्होंने कहा कि "यदि कोई यह प्रमाणित कर दे कि हिन्दू धर्म में अछूतों का छूना पाप है तो वे हिन्दू धर्म भी छोड़ देने को तैयार हो सकते हैं।"

"हम लोग पशुओं से बढ़कर हैं तब तक कि हम अपने कमजोर भाइयों के प्रति किए गए अत्याचारों का पश्चाताप न करें।" इस प्रकार गाँधी जी ने जो देश सेवा अछूतोद्धार करके की है वही अकेली उन्हें सदा के लिए अमर बनाने में समर्थ है।

उन्होंने कांग्रेस को अछूतों के लिए, स्कूल कुएँ इत्यादि बनवाने के लिए कहा। अछूतोद्धार के लिए उन्होंने सवर्ण जातियों से हाथ ही जोड़ना पर्याप्त न समझा। उन्होंने अपने को अछूतोद्धार आन्दोलन का अगुआ बनाया और स्वयं तन-मन से जुट गए। वे उन्हीं दलितों के पास गए और कहने लगे—अपने उद्धार के लिए तुम किसी के आश्रित क्यों बनो। स्वयं अपने उद्धार का उद्योग करो। पर कठिनता

उन्होंने यह भी कहा कि मैं यह नहीं कहता कि दोनों में पारस्परिक खान-पान, शादी-ब्याह न हो। पर इस अवस्था पर अभी यह असंभव है ऐसा होने में कम से कम एक सदी लगेगी।

(अक्तूबर २०, १९२१)

यह है कि अछूतों में कोई आगे ले चलने वाला नेता नहीं है तो इसके लिए सबसे अच्छी तरकीब होगी असहयोग आन्दोलन में भाग लेना। क्योंकि इसमें सभी वर्ग बराबर माने गए हैं। सच्चा असहयोग एक धार्मिक कार्य है और कोई भी व्यक्ति इसमें भाग नहीं ले सकता जो कि अछूतों के सिद्धान्त में विश्वास करता है। इस प्रकार गाँधी जी धर्म, मानवता, और देशभक्ति तीनों को सम्मिलित कर देते हैं।

१३—१४ अप्रैल १६२१ को अहमदाबाद में एक दलित-वर्ग कान्फरेन्स हुई। गाँधी जी इसके सभापति हुए और उन्होंने अपना एक सर्वोत्कृष्ट भाषण इस अवसर पर दिया। उन्होंने अछूतोद्धार पर जोर ही नहीं दिया वरन् उन्होंने अछूतों को उत्तेजित किया कि वे अपनों को अवसर के अनुकूल बनाने के लिए अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय दें। उन्होंने उनमें अपने ही में ज्वलन्त उत्साह को भरने का प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि ५ महीने में अछूत लोग अपने को बड़ी-बड़ी हिन्दू जातियों के समान घोषित करने में समर्थ हो जाएँगे।

अपनी आवाज़ को लोगों के हृदय में स्थान करते देखकर गाँधी जी को परम प्रसन्नता हुई। भारत के बहुत भागों में अछूतों का उद्धार हो गया और इस आन्दोलन में ब्राह्मणों ने भी हाथ बटाया। सवर्ण जातियाँ बहुत ही उत्सुकतापूर्वक अपने बन्धु प्रेम का परिचय देने लगीं। गाँधी जी ने एक उदाहरण दिया कि एक ब्राह्मण १६ वर्ष की अवस्था में अछूतों में काम करने की इच्छा से भंगी के कार्य तक को करने लगा।[१]

[१] १६२१ अपरैल के अन्त में अछूतपन कम होने लगता है। बहुत से गाँवों में अन्य वर्गों के साथ साथ अछूतों को भी रहने का अधिकार मिला। (अपरैल २७-१६२१) में अन्य बहुत से भागों में विशेषकर मद्रास में उनकी दशा अभी वैसी ही थी। पर इस समय के बाद राष्ट्रीय बैठकों में अछूतों का प्रश्न सामने आने लगा।

५

समान उदारता से गांधी जी ने दूसरा कार्य स्त्रियों के उद्धार का उठाया।

भारत में बाल-विवाह, वृद्ध विवाह आदि अनेक प्रकार की कुरीतियाँ फैली हुई हैं। स्त्रियों के प्रति पुरुष जाति का व्यवहार घृणास्पद और अशिष्ट है। गाँधी जी ने स्त्रियों के प्रश्न को हाथ में लिया और कहा कि अछूतों के समान ही गंभीर और विचारणीय इन असहाय भारतीय नारियों का भी प्रश्न है। पर स्त्री का प्रश्न केवल भारत ही का प्रश्न नहीं है। सारे संसार में इस प्रश्न से तबाही फैली हुई है। उन्होंने स्त्रियों को आगे बढ़ने की उत्तेजना दी और उनसे अपने को अच्छे व्यवहार की पात्र प्रमाणित करने का आदेश दिया। उन्हें अपने वर्ग के सामाजिक कार्यों में हाथ बटाने को कहा। उन्हें अपने विलासों और अन्य अक्रिय कार्यों से ही मुख न मोड़ लेना चाहिए वरन् उन्हें पुरुषों के साथ जीवन के कार्यों में हाथ बटाना चाहिए। कलकत्ता में अनेक स्त्रियों ने जेल की यातनाएँ स्वीकार कीं। इससे यह प्रमाणित होता है कि गांधी जी की आवाज़ का कितना प्रभाव पड़ा। पुरुषों से दया की भिक्षा मांगने के बदले स्त्रियों को कष्ट सहन करने में उनकी प्रतियोगिता करना चाहिए और जब भी त्याग का अवसर आवे तो उन्हें पुरुषों से अपने को एक कदम आगे ही रखना चाहिए। स्त्रियों को निर्भय होना चाहिए। "जो मरने की कला जानता है उसे डर की आवश्यकता नहीं है।"

गलतियों की शिकार हुई बहनों के प्रश्न को भी वे नहीं भूले। उन्होंने उनसे आन्ध्र और बीरसल में बातचीत की और उनके प्रति

सहानुभूति दिखाई। उन्होंने भी गांधी जी में विश्वास करके अपनी गलतियाँ उनसे कह दीं। इस पर उन्होंने उनके सम्मानपूर्वक निर्वाह के उपाय सोचे। उन्होंने प्रण किया कि यदि उनसे सहानुभूति तथा सहायता दिखलाई गई तो वे जो कार्य बतलाया जायगा उसे करने के लिए तैयार हैं। गांधी जी ने उन्हें चर्खा कातने की राय दी। उन्होंने दूसरे ही दिन से चर्खा कातना आरम्भ कर देना निश्चय किया।

भारतीय नारी में गाँधी जी ने चतुर एवं कुशल सहायिका का अनुभव किया और गांधी जी के अनुगामियों में कुछ परम सम्मानीय व्यक्तियों में स्त्रियों का स्थान आज दिन सर्व प्रतिष्ठित है।

६

१६२१ में गांधी का प्रभाव पराकाष्ठा को पहुँच गया था। आध्यात्मिक नेता के रूप में उनकी शक्ति अपरिमेय थी। बिना उनकी स्वतः इच्छा के उन्हें सब महान राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो चुकी थी। जनता उन्हें साधु के रूप में समझती थी। चित्रों में उन्हें श्री कृष्ण के समान दिखलाया जाता था[१] और साल के अन्त में अखिल-भारतीय नेशनल कांग्रेस ने अपने सारे अधिकार उन्हें समर्पित करके उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनने का अधिकार दे दिया। अब वे भारतीय राजनीति के निर्विवाद संचालक थे। यह अब उन्हीं पर निर्भर था कि वे राजनीतिक क्रान्ति आगे बढ़ाते। धर्म का भी सुधार उन्हीं के हाथों में था।

[१] गांधी जी ने 'यंग इंडिया' जून १६२१ में इसका विरोध किया था।

जब किसी सूक्ष्म सिद्धांत को व्यापक रूप दिया जाता है तो सर्वसाधारण में उसके कुप्रयोग की संभावना भी अधिक होती है। अपने आन्दोलन को अब इस विशाल पैमाने पर चलाना और फिर अहिंसा ऐसे बारीक सिद्धान्त पर सर्वथा अचल रहना, यह इस परिस्थिति में बहुत बड़ी बात थी। अहिंसा ऐसे सूक्ष्म सिद्धान्त पर अचल रहने का प्रण भला कोई व्यक्ति करे तो कर भी सकता है। पर इतने बड़े भारत के अहिंसा-पालन को पूर्ण जिम्मेदारी कौन ले सकता है। भीड़ की उत्तेजना में कौन अहिंसा की परवाह करता है। पर यह पवित्र चालक ईश्वर से प्रार्थना करता है और अपने इस उत्तरदायित्व पूर्ण महान् यज्ञ की पूर्णता के लिए उसी परमात्मा में विश्वास करता है।

गांधी जी कभी उत्तेजित नहीं हो सकते। उनके मस्तिष्क में सदा पवित्र विचार भरे रहते हैं और उनका हृदय अहंभाव से सर्वथा शून्य है। पर वे अपने से साधु नहीं बनते और न साधू कहलाना ही चाहते हैं। साधू शब्द ही, उनकी राय में आधुनिक जीवन से निकाल देना चाहिए।

मैं प्रत्येक अच्छे हिन्दू की भाँति ईश-प्रार्थना करता हूँ। मैं यह नहीं समझता कि मुझमें और ईश्वर में कोई असाधारण संबध है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर विद्यमान है वैसे ही मैं अपने में भी समझता हूँ। मैं कोई नया धर्म नहीं चलाना चाहता। मैं प्रचलित पंथों ही में से किसी का अनुसरण करना पसंद करूँगा क्योंकि मैं जानता हूँ कि मैं कोई नया सत्य नहीं कह रहा हूँ। जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह सभी कभी कहे जा चुके हैं फिर भी मैं इतना अवश्य मानता हूँ कि मैं बहुत से पुराने सिद्धान्तों को नवीन तात्पर्य एवं अर्थ देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

व्यक्तिगत रूप से वे सदैव विनम्र हैं। वे किसी अन्याय की

अनुमति नहीं दे सकते। उनका देश-प्रेम विश्व-प्रेम में समन्वित है। वे अपने देश के प्रेम में उतावले होकर अन्य देशों का अहित नहीं चाह सकते। "मैं मनुष्यता के नाते ही देश-भक्त हूँ। पर मैं केवल देश-प्रेमी ही नहीं हूँ। मैं अपने देश-प्रेम के कारण इँगलैण्ड या जर्मनी को हानि नहीं पहुँचा सकता। मेरे जीवन की योजना में साम्राज्यवाद का कोई स्थान नहीं है।

पर क्या उनके अनुयायी भी सदैव इसी विचार को मानते रहे हैं? वही अहिंसा का सिद्धान्त उनके अनुयायियों के मुख से जब निकलता है तो क्या उसका वही आशय या तात्पर्य होता है जो उनके स्वयं कहने से निकलता है? क्या उनके अनुयायियों के उपदेशों का जनता पर वही प्रभाव पड़ता है जो उनके उपदेशों का?

जब रवीन्द्रनाथ टैगोर १६२१ की अगस्त में योरप से भारत लौटे तो उन्हें भारतीयों की विचार-धारा में पूर्ण परिवर्तन देखकर आश्चर्य हुआ। टैगोर गांधी जी को सदैव संत की दृष्टि से देखते थे। मैंने कई बार उनके मुँह से गांधी जी की बहुत बड़ाइयाँ सुनी हैं। जब मैंने गांधी जी की बातचीत के सिलसिले में टालसटाय की चर्चा की तो टैगोर ने कहा कि गांधी जी को मैं इस समय पूर्ण रूप से जानता हूँ और गांधी जी टालसटाय से कहीं श्रेष्ठ हैं। गांधी जी प्रत्येक वस्तु को प्रकृति मानते हैं। उनका आन्दोलन आध्यात्मिक और स्वाभाविक है और टालसटाय के आन्दोलन में बल की प्रधानता है। यहाँ तक कि उनके अहिंसा के सिद्धान्त में भी हिंसा है। १० अप्रैल १६२१ को टैगोर ने गांधी जी के पास लिखा था "हम लोगों में दिव्य शक्ति अब भी विद्यमान है। इसके प्रमाणित करने का अवसर जो गांधी जी ने भारतवर्ष को दिया है उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।"

गांधी जी टैगोर के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे और यह श्रद्धा तब भी परिवर्तित नहीं होती थी जब कि वे दोनों आपस में मतभेद रखते

थे। जब कुछ लोग गांधी और टैगोर के बीच हुए मतभेद की चर्चा करते थे तो गांधी जी तुरन्त टोंक देते थे और कहते थे कि तुम नहीं जानते कि टैगोर का मैं कितना ऋणी हूँ।

टैगोर को यह नापसन्द था कि गांधी जी का अनन्त प्रेम ईश्वर की ओर न जाकर राजनीति में लग रहा था। पर गांधी जी कहते थे "यदि मैं राजनीति में भाग लेता हूँ तो इसलिए कि हम राजनीति से बच नहीं सकते। यह एक सर्प कुण्डली के तुल्य है और मैं इस सर्प से लड़ रहा हूँ। मैं राजनीति में धर्म का समन्वय कर रहा हूँ।" पर टैगोर इसकी भी निन्दा करते हैं।

सितम्बर १६२० में टैगोर ने लिखा है कि "हमें गांधी जी के संपूर्ण आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है। पर इस आध्यात्मिक शक्ति को राजनीति के कुटिल पथ पर लाकर विरोधियों के अत्याचार सहन कराना, यह भारत के लिए दुर्भाग्य की बात है। आध्यात्मिक शक्ति को राजनीतिक शक्ति में लगाना पाप है।"

यह है टैगोर की इस असहयोग के विषय में धारणा। उन्हें खिलाफ़त आन्दोलन और पंजाब की घटनाओं के कारण परिणाम के विषय में आशंका एवं डर लग रहा था और उनकी चलती तो जनता से अपने प्रति किये गए अत्याचारों को भूल जाने की जिद करते। यद्यपि वे गांधी जी की आत्मा और उनके सिद्धान्तों की प्रशंसा करते थे फिर भी असहयोग का जो नकारात्मक तात्पर्य निकलता था उससे उन्हें घृणा थी। टैगोर की नकारात्मकता में सहज अनिश्चय का आभास होता था और वे उससे घृणा करते थे।

इसी आधार पर वे ब्राह्मण-धर्म के निश्चयात्मक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे जिसमें जीवन के आनन्दों का पूर्ण परिष्कृत और सात्विक सेवन था वे बुद्ध धर्म की निन्दा करते थे जिसमें कि इच्छाओं का बर्बर दमन था। इस पर गांधी जी ने उत्तर दिया

कि दमन की कला उतनी ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है जितनी कि स्वीकार करने की। मानव-प्रगति दोनों पर ही निर्भर है। उपनिषदों का अन्तिम शब्द नकारात्मक है। उपनिषदों की ब्रह्म-व्याख्या "नेति" अर्थात् नकारात्मक है। काटना उतना ही आवश्यक है जितना कि बोना। पर टैगोर काटने की कला में विश्वास नहीं करते। अपनी कवित्व कल्पना में वे वस्तुओं की यथावत् स्वाभाविक स्थिति और अवस्था से संतुष्ट हैं। उन्हें निखिल वर्तमान रचना के स्वाभाविक और अकृत्रिम सामञ्जस्य ही में आनन्द आता है। उनका कथन है कि वे स्वयं भी कभी कभी देश-व्यापी प्रगति में सम्मिलित होना सोचते हैं पर उनकी अन्तरात्मा गवाही नहीं देती।

"मेरी निराशा के अन्धकार में" टैगोर कहते हैं, "एक मन्द मधु-स्मृति मुझसे कहती है कि तुम्हारा स्थान सुकुमार एवं सुखमय शैशव में है। तुम बालकों के साथ आनन्दमय संसार की वाटिकाओं में खेलो और तब मैं तुम्हारे साथ हूँ।" टैगोर सामञ्जस्य मे खेलते हैं और नित्य नूतन गीत का निर्माण करते हैं। उनके लिए सारे विश्व में प्रसन्नता का साम्राज्य है। ईश्वर स्वयं एक सर्वोच्च जादूगर है जो समय के साथ खेला करता है। माया की आँधी में ग्रह-नक्षत्रादि को उछालता और युगों की सरिता में दृष्टि की स्वप्न भरी कागज की नौकाओं को तैराया करता है। "जब मैं उससे अमर खिलौनों में अपने कुछ आविष्कार किए हुए खिलौनों को रखने के लिए कहता हूँ तो वह मुस्कराता है और मैं उसके उत्तरीय का छोर पकड़कर उसके साथ चल देता हूँ।" फिर आगे चलकर टैगोर अपने वास्तविक अस्तित्व का पता पाते हैं। "पर मैं कहाँ हूँ? मैं तो एक बहुत बड़ी सी भीड़ में चारों ओर से पिस रहा हूँ। इस जन-समुदाय में वह स्वर कौन सुनेगा जो मैं सुन रहा हूँ? मैं एक स्वर सुन रहा हूँ। मेरा सितार उस स्वर को ग्रहण कर सकता है और मैं उससे अपना स्वर मिला सकता हूँ क्योंकि मैं गायक हूँ। पर जन-समूह के

उन्मत्त कोलाहल में मेरा स्वर विलीन हो जाता है।" टैगोर ने असहयोग के कोलाहल में अपना स्वर ढूँढ़ने का प्रयत्न किया पर निष्फल हुए।

टैगोर सामञ्जस्य तथा रूपकों से खेलने वाले कवि ही नहीं थे वरन् योरप में पूर्वीय संस्कृति के अग्रदूत थे। वे भारत की आध्यात्मिकता के संदेशवाहक थे। अभी वे शान्ति निकेतन में विश्व संस्कृति का केन्द्र स्थापित करने की योजना पर योरप को सहमत करके आ रहे थे पर कैसी विषमता उन्हें मिली। एक ओर तो वे विश्व संस्कृति के सामञ्जस्य से विश्व-बन्धुत्व का नाता सारे विश्व से जोड़ने वाले थे और दूसरी ओर असहयोग आन्दोलन की शिक्षा दी जा रही थी।

इसलिए असहयोग से उन्हें द्विगुणित कष्ट हुआ—एक तो उनके कार्य के ठीक विपरीत था असहयोग आन्दोलन और दूसरे असहयोग उनके जीवन की परिभाषा के प्रतिकूल था। "मैं पूरब और पश्चिम की एकता ही में सर्वथा विश्वास करता हूँ।"

दूसरे शब्दों में जिस प्रकार १८१३ में गेटे ने फ्रान्सीसी सभ्यता त्यागना अस्वीकार किया था उसी प्रकार टैगोर ने पश्चिमी सभ्यता का तिरस्कार करना अस्वीकार किया। टैगोर को असहयोग से बड़ी व्यथा और व्यग्रता उत्पन्न हुई, और जब उनके शिष्य उनसे सलाह लेने आए तो वे बड़ी दुविधा में पड़ गए। उन्होंने पूछा "स्कूलों और कालिजों के बायकाट का क्या अर्थ है? यही न कि विद्यार्थीगण त्याग करें। पर त्याग किस बात का—अध्ययन और शिक्षा का। अर्थात् अशिक्षा के लिए विद्यार्थीवर्ग शिक्षा का त्याग करें। पहले स्वदेशी आन्दोलन में कुछ विद्यार्थियों ने उनसे कहा कि जब आप हमें कहेंगे तो हम अपने स्कूल कालिज छोड़ देंगे और जब उन्होंने ऐसा कहने से इनकार किया तो वे विद्यार्थी उन्हें छोड़कर स्वतः चले गए। उन्हें उनके देश-प्रेम में संदेह होने लगा।

१६२१ के बसंत में जब विद्यार्थी लोग स्कूलों कालिजों को छोड़ कर जा रहे थे, तो कुछ भारतीय विद्यार्थियों ने टैगोर के मित्र प्रोफेसर पियर्सन के लेकचर के मध्य में अपनी राष्ट्रीय भावनाओं का भद्दा उद्गार प्रगट किया। इस पर टैगोर को बहुत असंतोष हुआ और उन्होंने शान्ति निकेतन के मैनेजर को पत्र लिखते हुए इस भद्दे दृश्य के लिए असहयोग आन्दोलन को दोषी ठहराया। इस पर गांधी जी ने उत्तर दिया कि मुझे किसी भी सभ्यता से द्वेष नहीं है। पर किसी सभ्यता द्वारा अपनी सभ्यता का विनाश मैं नहीं देख सकता। उसके बाद उन्होंने भारतीय संस्था में अंगरेजी अध्ययन के प्रति संदेह प्रकट करते हुए लिखा कि इससे विद्यार्थियों का आचार आदि कुछ भी नहीं बन सकता। पर इसके साथ गाँधी जी ने खेद प्रकट किया कि टैगोर के शब्दों ने उन्हें संकुचित और संकीर्ण ठहराया है। वे इन सब के होते हुए किसी शिक्षा और सभ्यता के प्रति विद्रोही या द्वेषी भावनाएँ नहीं रखते।

ये स्पष्ट और भव्य शब्द थे, पर इनसे टैगोर का असंतोष कम नहीं हुआ। वे गाँधी जी में संदेह नहीं करते थे पर गाँधी जी के अनुयायिओं से अत्यन्त डरते थे और वे जब योरप से वापस आए तभी से उस अंधविश्वास से डरने लगे थे जो जनता गांधी के शब्दों में रखने लगी थी। उन्होने इस अन्धविश्वास के विरोध में "ऐन अपील टु ट्रूथ" नामक एक संदेश निकाला। इसमें उन्होंने सत्य पर ज़ोर दिया और अन्धविश्वास का प्रचण्ड खंडन किया।

उन्होंने पहले तो गांधी जी की पर्याप्त प्रशंसा की; फिर उसके बाद उन्होंने अपना स्वर बदल दिया। उन्होंने कहा कि जब मैं बाहर योरप में यात्रा कर रहा था तो मुझे भारत की विचार-धाराओं से पर्याप्त सुख और शान्ति मिलती थी। पर जब मैं भारत में आया तो मेरे विचार एकाएक बदल गए। मुझे अनुभव हुआ कि इस अंधे देश में अन्ध

विश्वास अपने सारे दुर्गुणों के साथ वर्तमान है। यहाँ की जनता अपने हृदय की आवाज़ सुनने की अभ्यस्त नहीं है और एक बाहरी आवाज़ की चक्की में अपनी भावनाओं को बर्बरता से पीस रही है। सभी स्थानों पर मुझे बतलाया गया कि सभ्यता, बुद्धि और तर्क को तिलांजलि देकर अंध-विश्वास और अंध-भक्ति अपनाई जानी चाहिए। आत्मा की सच्ची विचारात्मक स्वतंत्रता को भी किसी एक बाहरी स्वतंत्रता के नाम पर यों ही कुचल देना आज दिन भारत में कितना आसान सा कार्य है। आश्चर्य है।

टैगोर का विद्रोह एक स्वतंत्र आत्मा का विद्रोह है। अंध विश्वास कुछ लोगों की स्वतंत्रता भले ही जान पड़े पर जनता के लिए इसके अर्थ हैं एक दूसरे प्रकार की दासता।

टैगोर के शब्द अंधी जनता के विरुद्ध कटाक्ष-मात्र ही नहीं है, बल्कि कुछ और भी है। अन्धी जनता पर विरोध प्रदर्शित करके वे गांधी जी पर कटाक्ष करते हैं। गांधी जो चाहे कितने भी बड़े क्यों न हों फिर भी क्या वे अपनी पात्रता से अधिक नहीं ले रहे थे? भारत की स्वतंत्रता सरीखा एक महान् कार्य और वह केवल एक व्यक्ति की इच्छा या मनोभाव पर निर्भर करे! महात्मा अहिंसा और प्रेम के प्रतीक हैं पर स्वराज्य की प्राप्ति एक बहुत पेचीदा और कठिन समस्या है। "इसके मार्ग विकराल और अगम हैं। आवेश और उत्साह की भी आवश्यकता है और वैज्ञानिक चिंतन की भी। राष्ट्र की सारी आध्यात्मिक शक्तियों का प्रयोग करना होगा। अर्थ-शास्त्र-वेत्ताओं को व्यावहारिक उपाय सोचने होंगे, शिक्षकों को शिक्षा देना होगा, राजनीतिज्ञों को विचार करना होगा, मज़दूरों को काम करना होगा, सभी ओर सीखने की इच्छा को स्वतंत्र और प्रतिबंध रहित रखना होगा। योग्यता और बुद्धि पर किसी भी दबाव का बोझ प्रकट या अप्रकट किसी भी रूप में न पड़ना चाहिए।" "प्राचीन युग में हमारे आदि

गुरु हमें कार्य में बढ़ाना चाहते थे। वे सभी सत्य के अन्वेषकों को बुलाकर मंत्रणा करते थे······हमारे गुरु जो हमारा नेतृत्व करना चाहते हैं वे भी उसी प्रणाली को क्यों नहीं अपनाते। पर गुरु गांधी ने जो एक मात्र आज्ञा आज तक दी है वह है "चरखा कातो, कपड़ा बुनो"। टैगोर पूछते हैं "क्या यही एक नवयुग का संदेश है। यदि बड़ी-बड़ी मशीनरियाँ योरप में हानि पहुँचा रही हैं तो क्या छोटी छोटी मशीनरियाँ भारत को अधिक हानि न पहुँचा सकेंगी।" किसी राष्ट्र की शक्तियों को केवल आपस ही में सहकार्य न करना चाहिए वरन उन्हें अन्य राष्ट्रों की शक्तियों के साथ-साथ भी सहकार्य करना चाहिए। "भारत की जागृति, विश्व जागृति से संबन्धित है। जो राष्ट्र अपने को अपने में सीमित करना चाहेगा वह नवयुग की आत्मा का अनादर करता है।" टैगोर अपनी योरप-यात्रा में मिले हुए कुछ महान् व्यक्तियों का नाम गिनाते हैं जिन्होंने मानवता की सेवा के लिए अपने राष्ट्र की अन्ध भक्ति को त्याग दिया था। उन्हें सभी राष्ट्रों से सहानुभूति है और वे ही सच्चे "सन्यासी" हैं क्योंकि उन्होंने विश्व-एकता का तत्व समझ लिया है। उनके लिए ही "वसुधैव कुटुम्बकम्" है।

तो क्या केवल भारत ही अब घृणा और नकारात्मकता का पाठ पढ़ेगा। जब पक्षी नींद से जागता है तो वह केवल भोजन को ही नहीं सोचता—वरन् नव ऊषा की अगवानी में उसके कण्ठ सुन्दर स्वरों से भर उठते हैं। जब हम प्रातः उठते हैं तो सब से पहले हमारा कर्तव्य उसका ध्यान करना होता है जो एक है, जिसे वर्ग या वर्ण में विभाजित नहीं किया जा सकता और जो अपनी अनन्त शक्तियों से सभी वर्गों और वर्णों के अस्तित्व का प्रबन्ध करता है। आओ हम सब उसी की प्रार्थना करें जो हम सभी को एक मत करके एकता प्रदान करता है।"

टैगोर के ये सुन्दर शब्द किसी राष्ट्र के प्रति कहे गए सभी संदेशों में सर्वोत्कृष्ट हैं और ऊषा के समान सुखदाई हैं। इसके उत्तर में गांधी जी ने १३ अक्तूबर १६२१ को अपना सबसे भावुक उत्तर दिया। इसमें उन्होंने भारत के इस सजग संतरी को धन्यवाद देते हुए उससे अपना सहमत प्रगट किया। उन्होंने लिखा कि सभी चीज़ों से अधिक महत्व-पूर्ण है आत्मा की स्वतन्त्रता। हमें अपने तर्क और अपनी विचार शक्ति किसी को समर्पित न करना चाहिए। प्रेम में अन्ध समर्पण अन्यायी के कोड़ों के समक्ष बलात समर्पित होने से भी बुरा है। बर्बरता के दासों की मुक्ति तो सम्भव है पर भावनाओं के दासों की कदापि नहीं।"

महात्मा ने कभी भी अपने प्रति अंध-विश्वास होने को प्रोत्साहन नहीं दिया। यदि चरखा लोगों ने अपनाया तो तभी जब बहुत सोच-विचार के बाद लोगों को इसकी आवश्यकता पर विश्वास हो गया। उन्होंने कहा कि टैगोर कवि हैं, वे कविता के लोक में महान् हैं, पर यह है युग क्रान्ति का। इस समय उन्हें अपनी उच्चतम कल्पनाओं के अनुकूल वातावरण नहीं मिल सकता।

"जब मेरे आस-पास सभी खाये बिना मर रहे हैं, उस समय मेरा केवल यही कार्य हो जाता है भूखे के लिए अन्न की व्यवस्था करना। भारत एक जलता हुआ घर है। वह भूखों मर रहा है क्योंकि उसके लिए कोई काम नहीं जिसे करके वह भोजन कमा सके। भारत भूख से मर रहा है। उड़ीसा में दुर्भिक्ष और अनन्त कष्ट है। सारा भारत दिन प्रति-दिन दीन हो रहा है। यदि हम उसकी रक्षा नहीं करते तो उसका संपूर्ण विनाश निश्चित है।

अकाल से त्रस्त और आलसी जनता का ईश्वर केवल भोजन और मज़दूरी है। ईश्वर ने मनुष्य को कार्य करने और भोजन कमाने के लिए पैदा किया और कहा कि वे जो बिना कमाए खाते हैं,

चोर हैं। आज करोड़ों भारतीय पशुओं से भी बुरी दशा में भूख से त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। यह भूख की वही समस्या है जो लोगों को चरखे की ओर आकर्षित कर रही है।

कवि आने वाले युग का संदेशवाहक होता है। पर हम सभी कवि नहीं हो सकते। हमें वर्तमान में रहना है। आज तो भोजन का प्रश्न है। हमें अपने भोजन की व्यवस्था करनी है। यदि अपनी जेब में जाने वाले पैसों का अर्थ सोचिए तो आपको मालूम होगा कि मैं सत्य कह रहा हूँ। चरखा कातना प्रत्येक का धर्म है। टैगोर भी चरखा कातें, अपने विदेशी वस्त्र जला दें। वर्तमान् में यही आवश्यक है। भविष्य ईश्वर के हाथ है। गीता कहती है "गति शोका न कर्तव्यो, भविष्यं नैव चिन्तयेत्। वर्तमानेन कालेन, वर्तयन्ति विचक्षणाः"

इन शब्दों से हमें विश्व के दुःखों का पता चलता है। यही संसार के कष्ट और यातनाएँ खड़ी होकर कला से कहती हैं "मेरे अस्तित्व से इनकार करो तो देखें।" कौन गांधी जी के इस आवेशपूर्ण उत्तर से सहानुभूति नहीं रखता और इसके सत्य की ओर कौन नहीं आकर्षित होता।

इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य जाति के युद्ध में नियन्त्रण और विश्वास की आवश्यकता होती है। इसमें अनुगमन करने की भावना पहले उत्पन्न करना पड़ता है; पर यह अनुगमन जबरदस्ती लादना अन्याय अवश्य है। जो लोग ऐसा करते हैं वे स्वदेशी के गलत अर्थ लगाते हैं वे स्वदेशी को साधन न समझकर स्वतः साध्य समझने लगते हैं। सत्याग्रह आश्रम के एक प्रोफेसर काका कालेलकर ने स्वदेशी की जो परिभाषा दिया है और जिसका गांधी जी ने अनुमोदन किया है उस की भी समीक्षा करना आवश्यक है। यह विवेचन भारत के प्रत्येक प्राणी के लिए था।

ईश्वर संसार के उपकारार्थ अवतार लेता है। उनका अवतार

आवश्यक नहीं कि मनुष्य ही के रूप में हो।......वे किसी सिद्धान्त रूप में भी अवतरित हो सकते हैं जिससे कि लोक का कल्याण हो सके।... . उनका अन्तिम अवतार स्वदेशी के सिद्धान्त के रूप में हुआ है।

स्वदेशी का मूल सिद्धान्त ईश्वर में आस्था रखने से आरम्भ होता है। ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी को उसके अनुकूल वातावरण में तदनुरूप कार्य करने के लिए रखा है। अतः मनुष्य की इच्छाएँ और उसके कार्य अपनी अवस्था और अपने वातावरण के अनुरूप होना चाहिए। हम जिस प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार जन्म; परिवार तथा देश नहीं पा सकते उसी प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार हम सभ्यता भी नहीं पा सकते। ईश्वर ने जो कुछ हमें दिया है उसे हमें स्वीकार करना पड़ेगा। अतएव परम्पराओं को हमें ईश्वरीय समझकर उसके अनुरूप रहना चाहिए। किसी परम्परा या परिपाटी को त्यागना पाप है।"

इन्हीं तर्कों पर हमें यह कहना पड़ता है कि एक देश के निवासियों को दूसरे देश के निवासियों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

'स्वदेशी का अनुगामी संसार के सुधार का व्यर्थ बोझ अपने सिर नहीं लेता क्योंकि वह जानता है कि संसार ईश्वर के नियमों के अनुकूल ही प्रेरित होगा। पर क्या यह किसी देश के लिए उचित होगा कि प्रत्येक अवसर को अपने उद्योगों और व्यापारों की बढ़ती ही में उपयोग करे। नहीं कदापि नहीं। जिस प्रकार एक देश से दूसरे देश में विचार नहीं भेजा जाना चाहिए उसी प्रकार सामान भी नहीं भेजा जाना चाहिए। यदि आज भारत की यह दशा है तो वह इसीलिए कि प्राचीन युग में भारत ने इस प्रकार के पाप किए थे। हमारे पूर्वज रोम और मिस्र तक व्यापार किया करते थे उसी का परिणाम हम आज भुगत रहे हैं। प्रत्येक राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग को अपनी ही सीमा में रहना

चाहिए अपने ही साधनों को उपयोग में लाना चाहिए और अपने रीति रिवाजों से प्रभावित होना चाहिए।

टैगोर को इन उत्तरों से अत्यन्त आश्चर्य और संदेह हुआ वे इन सिद्धान्तों को पढ़ स्तंभित रह गए। गांधी जी ने स्वदेशी की व्याख्या करते समय संसार का ध्यान एकदम छोड़ भी नहीं दिया था। उन्होंने लिखा "स्वदेशी संसार के लिए एक संदेश हो" तात्पर्य यह कि उनके लिए संसार का भी अस्तित्व है। उन्होंने कहा "असहयोग आन्दोलन अँगरेजों या पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध नहीं है वरन् पाश्चात्य शोषण और भ निक नीति के विरुद्ध है।" हमारा असहयोग इसलिए नहीं है कि हम मानवता की कोई सेवा न करें वरन् इसलिए कि हम कुछ दिन अपने ही म शक्ति-प्राप्त करें और अपने को मानवता की सेवा करने के योग्य बना सकें। "भारत को संसार का उपकार करने के पहले जीवित रहने की विद्या जाननी चाहिए।" यदि उनके ठोस सिद्धान्तों का सम्यक् पालन हो सके तो गांधी जी का योरप से सहयोग करने में कोई विरोध नहीं।

गांधी का सच्चा सिद्धान्त और भी व्यापक तथा मनुष्यतापूर्ण है पर फिर भी गांधी जी ने उपर्युक्त स्वदेशी की व्याख्या पर हस्ताक्षर क्यों किए? क्यों उन्होंने अपने विश्व व्यापक अहिंसा के सिद्धान्त को भारतीय पौराणिकता में लाकर जकड़ दिया? अंधे चेलों से बचो। जो जितना ही बड़ा चेला होता है वह उतना ही बुरा होता है। ईश्वर संसार के बड़े लोगों को ऐसे मित्रों से बचावे जो उनके कथन के केवल आंशिक आशय समझते हैं। उनके आदर्शों को लिखते समय वे उसके सामञ्जस्य और व्यापकत्व को नष्ट कर देते हैं।

पर बात यहीं खतम नहीं होती। जब अपने शिक्षक के अत्यन्त समीप रहने वाले चेले में यह बातें हैं तो उनकी बात तो फिर कहना ही क्या जो उनके भी चेले या उनके चेलों के चेले इत्यादि हैं। दुर्भा-

ग्यवश उनकी दृष्टि में सिद्धान्त विचित्र ही रूप में दिखाई देते हैं। वे स्वदेशी से यही समझते हैं कि चर्खा कातते-कातते एक चर्खा उनसे प्रसन्न हो जायगा और उन्हें स्वराज्य देकर अन्तर्धान हो जायगा। अतः टैगोर की आशंकाएँ एकदम निर्मूल नहीं कही जा सकती है। गांधी जी भी इस आशंका से खाली नहीं है वे कहते हैं "मैं उसी दिन इस क्षेत्र से हाथ खींच लूँगा जिस दिन मुझे अँगरेजों से घृणा का अनुभव होने लगेगा।" उनका सिद्धान्त बुरों से घृणा करना नहीं है वरन् बुराई से करना है "शैतानी से घृणा करो पर शैतान से प्रेम ही करो" यही उनका सिद्धान्त है। पर यह भेद इतना सूक्ष्म है कि साधारण लोग इसे समझ नहीं पाते। अगस्त १९२१ में जब गांधी जी ने टैगोर के मित्र ऐण्ड्रूज़ को उन बहुमूल्य कपड़ों के जलाने का कारण लिखा तो कहा कि मैं जनता का क्रोध मनुष्यों की ओर से हटाकर चीज़ों के विरुद्ध ला रहा हूँ।" पर वे इसका अर्थ यह नहीं समझते थे कि पहले चीज़ों पर क्रोध उतारो और फिर मनुष्यों पर। उन्हें क्या पता था कि तीन से भी कम महीनों में लोग उसी बम्बई में एक दूसरे का गला काटेंगे। गांधी जी में संतों का गुण कूट-कूट कर भरा हुआ है। वे अत्यन्त पवित्र हैं और मनुष्यों को दास बनाने वाली पाशविक प्रवृत्तियों से बहुत दूर हैं। ये जनता के सच्चे नेता हैं और जनता की अन्ध प्रवृत्तियों को जानते हैं। "भम्भड़ से चैतन्य रहो।" यही उनका आधारभूत विचार है। पर यह भीड़ की उत्तेजना अकेले तो एक गांधी के सिद्धान्तों से नहीं दब सकते। इसे दबाने और परिस्थिति के अनुकूल चलाने के लिए तो आवश्यक यही है कि गांधी जी अपने को श्रीकृष्ण का अवतार होने का स्वांग करें जिससे जनता उनकी अन्ध-आस्था करती हुई प्रत्येक समय उनके शब्द प्रति शब्द के अनुकूल आचरण करे। पर गांधी जी की विनम्रता और हिचक उन्हें ऐसा करने से रोकती है। फिर भी अत्यंत उद्वेलित इस जन-समूह के कोलाहल

को पार करता हुआ उसी अकेले पवित्र कण्ठ का एकमात्र स्वर सुनाई देता है जो वस्तुतः वंदनीय एवं अर्चनीय है।

तीसरा भाग

§

१

१६२१ में असहयोग आन्दोलन और ज़ोर से चला। पूरा साल अनिश्चयात्मक था। लोगों की आशाएँ अनेक दिशाओं में चक्कर काट रही थीं। कहीं-कहीं हिंसात्मक दंगे भी हुए। गांधी जी चिन्ता में मग्न हो गए।

कुछ समय तक तो विरोध बढ़ता ही रहा। पर जब सरकार का बर्बर व्यवहार बढ़ता ही गया तो इसने खुले आम विद्रोह का रूप धारण करना आरम्भ कर दिया। मलेगाँव और गिरिडीह में दंगे हो गए। मई १६२१ के आरंभ में आसाम में जनता और सरकारी शक्तियों का चिन्ताजनक संघर्ष हो गया। बारह हज़ार कुलियों ने चाय के बगीचों में काम करना बन्द कर दिया और उन पर गुरखों ने हमला कर दिया। यह सरकार के प्रोत्साहन से हुआ था। इसके विरोध में पूर्वीय बंगाल रेल और स्टीमरों के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दिया। गाँधी जी ने भरसक इन सब उपद्रवों को दबाने का प्रयत्न किया। मई में उन्होंने वाइसराय से बहुत लम्बी चौड़ी वार्ता किया। उन्होंने स्वयं भी अली बंधुओं पर प्रभाव डाला जो कि अपने उत्तेजना-पूर्ण भाषणों से जनता को अग्रसर कर रहे थे। गाँधी जी ने अपने मुस्लिम मित्र को किसी भी रूप में हिंसा का प्रचार न करने पर सहमत कर लिया।

जैसे-जैसे समय बीतने लगा असहयोग आन्दोलन और अधिक जोर पकड़ने लगा। विशेषकर मुसलमान लोग कट्टर हो गए। ८

जुलाई को कराची में जो खिलाफ़त कान्नफ्रेन्स हुई उसमें घोषित किया गया कि कोई भो मुसलमान सेना या अन्य स्थानों का काम न करे। सच तो यह है कि इस कान्फ्रेन्स में यहां तक ऐलान किया गया कि यदि अँगरेज़ सरकार अंगोरा के नेताओं के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करती तो हम भारत में स्वतंत्र सत्ता की घोषणा कर देंगे। २८ जुलाई को बम्बई में बैठी हुई नेशनल कांग्रेस की बैठक ने प्रिंस आफ़ वेल्स का बायकाट करने का विचार किया। और सभी विदेशी वस्तुओं का पूरा बायकाट सितंबर ३० से ऐलान किया। इसने शराब पाने की कुप्रथा मिटाने का और प्रयत्न करने का प्रण किया और चरखा कातने और बुनाई में और प्रगति लाने का निश्चय किया। पर इंडियन नेशनल कांग्रेस ने सामूहिक नियम भंजन तथा क्रान्तिकारी आतंकपूर्ण रीतियों से मुख मोड़ने का निश्चय दुहराया। असहयोग आन्दोलन अहिंसात्मक ढग से चलेगा—इस सत्य पर जोर दिया गया।

अगस्त में मोपलास में एक विद्रोह हुआ और कई महीनों चला। गांधी जी ने मौलाना मुहम्मदअली के साथ जाकर उसे शान्त करने का निश्चय किया। पर ब्रिटिश सरकार ने मुहम्मदअली और उनके भाई शौकतअली को खिलाफत कान्फरेंस में हिंसात्मक प्रस्ताव पास करने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिया। अली बन्धुओं की गिरफ्तारी के बाद दिल्ली में बैठी हुई केन्द्रीय खिलाफ़त कमेटी ने प्रस्ताव का समर्थन किया। सारे देश में सैकड़ों जलूस निकले और इससे मालूम हुआ कि जनता उन प्रस्तावों का समर्थन कर रही है। ४ अक्टूबर को गांधी जी ने घोषित किया कि वे मुसलमान भाइयों का प्रश्न अपना प्रश्न समझते हैं। कांग्रेस के पचास प्रमुख कार्यकर्ताओं द्वारा अनुमोदित एक घोषणापत्र निकाला गया कि प्रत्येक भारतीय को असहयोग आन्दोलन पर अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है। कोई भी भारतीय अंगेरेजी सेना तथा तथा अफिसों में काम न करे।

अंग्रेज सरकार ने हममें आर्थिक, राजनैतिक और चारित्रिक पतन ला दिया है। ऐसी सरकार का विरोध करना ही हमारा मुख्य धर्म है। अली बन्धुओं पर कराची में मुकदमा चलाया गया और उनके साथियों को दो साल की कैद हुई।

इस सजा पर भारत और भी जल उठा और उसने दूने पराक्रम से उत्तर दिया। ४ नवम्बर को अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी ने गाँधी जी की घोषणा का दिल्ली में समर्थन किया। काँग्रेस ने प्रत्येक प्रान्त को अपने उत्तरदायित्व पर सामूहिक नियम भंग करने का अधिकार दे दिया। "पहले टैक्स देना बन्द कर दो।" पर आज्ञा भंग करने वालों को सबसे पहले स्वदेशी का व्रत लेना आनवार्य कर दिया गया। आन्दोलन की "स्वान्तः सुखाय" प्रकृति स्पष्ट करने के लिए यह घोषित किया गया कि किसी भी असहयोगी या आज्ञा भंग करने वाले राष्ट्रीय को कमेटी की ओर से कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलेगी।

जब नवम्बर १७ को प्रिंस आफ वेल्स भारत पधारे तो आन्दोलन जोरों में था। लोगों ने बायकाट किया। पर धनी और रईस लोग बायकाट में न शामिल हुए। इस पर बम्बई के मध्य वर्ग और निम्न वर्ग में इतना असंतोष जाग्रत हुआ कि वे सभी उत्तेजित होकर धनी तोंद वालों का घर लूटने, जलाने और मारपीट भी करने लगे। हिंसा का यह एक दृष्टान्त था पर और पूरे भारत में पूर्ण शान्ति के साथ हड़ताल मनाई जा रही थी। किसी भी प्रकार का कोई दंगा नहीं था। पर बम्बई की हिंसाओं ने गाँधी जी के हृदय में तीर का सा आघात पहुँचाया। वे तुरन्त वहां पहुँचे और जनता ने उनका बड़े समारोह के साथ स्वागत किया। इससे वे और भी क्रुद्ध हो गए और उन्होंने भीड़ को डांटकर कहा कि यदि कुछ पारसी लोग प्रिंस आफ वेल्स का स्वागत करना चाहते तो क्या हानि थी? पर किसी भी दशा में हिंसा का कार्य अनुमोदित नहीं किया जा सकता।

इसके बाद उन्होंने भीड़ को भंग कर दिया।' पर कुछ दूर जाकर भीड़ फिर उत्तेजनापूर्ण बातें करने लगी। भला एक आदमी २० हज़ार के उत्तेजित आन्दोलन को कहाँ तक रोक सकता है। फिर भी आन्दोलन अपनी कार्यवाइयों में सीमित हो गया और हिंसा लगभग नहीं के हो गई। पर गांधी जी को बड़ा खेद हुआ और इतनी वेदना उन्हें पहुँची कि उन्होंने अपने को तथा उन आन्दोलन करने वालों को दण्ड देने के लिए सामूहिक आज्ञा भंग का प्रस्ताव खारिज कर दिया। इसकी सूचना उन्होंने एक घोषणा के द्वारा बम्बई की जनता को दे दिया। उन्होंने कहा कि अभी लोग सामूहिक-आज्ञा-भंग करने के योग्य या पात्र नहीं हुए हैं। अपात्रों के ज़िम्मे इतना महत्वपूर्ण कार्य सौंपने की अपनी ग़लती पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने इसके लिए प्रति सप्ताह चौबीस घंटे उपवास करने का प्रण किया।

भारत में रहने वाले योरपीय बम्बई की हिंसा से इतने स्तंभित नहीं हुए थे जितने कि संपूर्ण भारत की शान्तिमय हड़ताल से। उन्होंने वाइसराय से दमन करने का आग्रह किया। अनेकों नियम दमन के लिए बनाए गए। १६०८ की एक पुरानी धारा द्वारा जिसमें कि क्रान्तिकारी सभाओं को गैर कानूनी ठहराया गया था, ख़िलाफ़त कमेटी और कांग्रेस कमेटी के वालंटियरों को गिरफ़्तार कर लिया गया। हजारों की संख्या में गिरफ़्तारियां हुई। पर उनका परिणाम यही हुआ कि हजारों नए स्वयंसेवकों ने असहयोग करने के लिए विभिन्न प्रान्तों से अपने-अपने नाम लिखाए। उसी बीच प्रिन्स आफ वेल्स कलकत्ता जा रहे थे। जिस दिन वे कलकत्ता पहुँच रहे थे उसी दिन २१ दिसम्बर को वहां हड़ताल मनाई गई। इधर प्रिन्स आफ़ वेल्स कलकत्ता पहुँचे तो उन्हें सारा शहर एकदम सूनसान मिला।

जब कांग्रेस की बैठक अहमदाबाद में हुई उस समय विद्रोह की अग्नि सुलग रही थी और भड़कने के स्थान पर थी। कांग्रेस का सभा-

पति इस समय जेल में भर दिया गया था। थोड़े ही बाद विवाद के बाद कांग्रेस ने फिर अपनी असहयोग की नीति का निश्चय किया। सभी नागरिकों को जेल में जाने का आदेश दिया गया और जनता को बड़ी-बड़ी सभाएँ करने का आदेश दिया गया। इस बैठक में यह भी निश्चय किया गया कि सामूहिक आज्ञा भंग करना, सशस्त्र विद्रोह से अधिक मनुष्यतापूर्ण है और प्रस्ताव पास किया गया कि जैसे ही लोग अहिंसा के तत्व को समझ जायँ वैसे ही सामूहिक आज्ञा-भंग आरंभ हो जाय। यह अनुभव करते हुए कि इस बैठक के समाप्त होने पर इसके बहुत से सदस्य गिरफ़्तार कर लिए जाएँगे, इस कमेटी ने अपने सभी अधिकार गांधी जी के हाथों सौंप दिया। इस प्रकार गांधी जी भारतीय राजनीति के एकमात्र संचालक हो गए। इस कमेटी ने गांधी जी के अधिकारों पर केवल एक प्रतिबंध रखा—वह यह कि गांधी जी बिना इस कमेटी की राय के सरकार से सुलह नहीं कर सकते थे। आने वाले हफ़्तों ने यह प्रमाणित कर दिया कि महात्मा गांधी का धार्मिक प्रभाव कितना प्रबल है। २५ हज़ार स्त्री-पुरुष प्रसन्नतापूर्वक कारावास की यातना झेलने चले गए। और फिर भी हजारों अपनी सेनाओं को देश की बलिवेदी पर अर्पित करने को तैयार थे।

§

२

फिर गाँधी जी को विश्वास हुआ कि जनता सामूहिक आज्ञा-भंग करने के पात्र हो गई है। इसका परिचय बारदोली के एक आदर्श जिले में होने को था। यहाँ गाँधी जी के विचार सदा ठीक ढंग पर समझ कर व्यवहार में लाये जाते थे। ९ फ़रवरी १९२२ के खुले खत में गाँधी जी ने अपना प्रोग्राम बनाया। गाँधी जी ने लार्ड रीडिंग को

अपनी नीति बदलने के लिए सात दिन का अवसर दिया और लिखा कि यदि वाइसराय इस साधारण सी बात को समझने का प्रयत्न न करेंगे तो सामूहिक आज्ञा-भंग आरंभ हो जायगा।

वाइसराय तक यह पत्र कठिनता से पहुंच पाया होगा कि एक अत्यन्त भयानक हिंसा हो गई। गोरखपूर ज़िले में चौरीचौरा में एक जुलूस निकला उसमें जब जुलूस जा रहा था या लगभग चला गया था तो कुछ पुलिसवालों ने कुछ भद्र पुरुषों के साथ शरारत किया। इस पर उन लोगों की भाड़ ने उन पर हमला कर दिया। फलस्वरूप पुलिस वालों ने गोली चलानी शुरू कर दी। जब उनकी सब गोलियां ख़तम हो गईं तो वे लोग भागकर थाने में जा छिपे। भीड़ ने उनका पीछा किया। थाने में घुसकर आग लगा दिया। फिर उन सिपाहियों ने बहुत हाथ पैर जोड़कर क्षमा मांगी पर इन लोगों ने एक न सुनी। सभी सिपाही और अफ़सर गिन-गिनकर मार डाले गए। क्योंकि झगड़ा पुलिस वालो ने शुरू किया था और असहयोगियों का इसमें कोई हाथ न था इसलिए गांधी जी उत्तरदायित्व से अपने को साफ़ बचा सकते थे पर दरअसल वे सभी भारतीयों को अपने सामान ही जानने लगे थे। किसी की ग़लती वे अपनी ग़लती समझने लगे थे। उन्होंने लोगों द्वारा किए गए सभी पापों का बोझ अपने सिर ले लिया। इन्हें इतना खेद हुआ कि जब वे सामूहिक आज्ञा-भंग आरंभ करने जा रहे थे उसी समय उन्होंने इस विचार को दूसरी बार भी त्याग दिया। बम्बई के दंगों के बाद जो स्थिति थी अब स्थिति उससे भी अधिक गंभीर थी। अभी दो ही एक दिन पहले उन्होंने सरकार को चेतावनी दी थी। अब तुरन्त ही यदि उस विचार को बदलते हैं तो कितना हास्यास्पद दृश्य उपस्थित होता है। फिर भी गांधी जी ने अपने विचार स्थगित करने का निश्चय किया। "शैतान ने मेरे कार्य को रोक दिया" गांधी जी ने क्रोध में कहा।

और फिर १६ फ़रवरी १६२२ को गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में एक अद्वितीय लेख निकाला। अपनी अन्तरात्मा के आंतरिक संताप से पीड़ित होकर उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने उन्हें नीचा दिखाया।

ईश्वर मुझ पर आवश्यकता से अधिक दयालु रहा है। उसने मुझे तीसरी बार चेतावनी दी कि भारत में अभी वह अहिंसापूर्ण वातावरण नहीं है जिसमें कि सामूहिक आज्ञाभंग का प्रयोग किया जा सके।...१६१६ में जब रौलट आंदोलन आरम्भ हुआ तब उसने मुझे सावधान किया, अहमदाबाद, वीरम्ग्राम और विदा ने गलतियाँ की। मैंने अपने पैर पीछे खींच लिए और इसे एक बहुत बड़ी ग़लती घोषित किया।...दूसरी बार यही घटना बम्बई मे हुई, ईश्वर ने मुझे सख्त चेतावनी दी; मैंने बारदोली में होने वाले सामूहिक आज्ञा-भंग को रोक दिया। इसमें मुझे १६१६ से अधिक वेदना हुई।

पर सबसे अधिक वेदना मुझे अब हुई। चौरीचौरा के रूप में मानो ईश्वर ने स्वयं मुझसे कहा कि तुम्हारी आशाओं के अनुकूल कार्य करने में भारत असमर्थ है जब कि भारत अहिंसा व्रत का प्रण किए हुए है और अहिंसात्मक कार्यों द्वारा स्वतंत्र होना चाहता है, ऐसे समय में छेड़े जाने पर भी हिंसा की ओर आकर्षित होना महापाप है।

इसलिए बारदोली में उन्होंने अपनी कठिनाइयों और शंकाओं की वार्ता बारदोली की वर्किंग कमेटी में रखा। उनमें से सभी उनसे सहमत नहीं थे फिर भी उन्होंने कहा कि "मुझे इतने विचारवान् और क्षमाशील साथी कभी नहीं मिले थे।"

उन्होंने उनसे सहानुभूति दिखलाई और उनके अनुरोध पर सामूहिक आज्ञा-भंग को आज्ञा वापस ले ली। इसके अतिरिक्त भी सभी संगठित राष्ट्रीय संस्थाओं की अहिंसात्मक भावनाओं की जागृति

पैदा करने की आज्ञा दी गई।

मैं जानता हूँ कि इस प्रकार उलटे पैर पीछे मुड़ना राजनीति में मूर्खता और अनौचित्य है, पर फिर भी धर्म के क्षेत्र में यह बहुत ठीक और समुचित है मेरे द्वारा ग़लती के स्वीकार करने से देश को लाभ होगा। मैं केवल एक गुण को अपनाना चाहता हूँ और वह है सत्य और अहिंसा। मैं किसी दैवी शक्ति के धारण करने का दम नहीं भरता। मैं उसी अस्थि माँस से बना हुआ हूँ जिससे कि कोई दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति बना होगा, इसलिए मैं भी ग़लती कर सकता हूँ। मेरी सेवाएँ बहुत अंशों में सीमित हैं पर ईश्वर ने उन्हें उनकी अपूर्णता के होते हुए भी अभी तक अपना अभयवर ही दिया है।

स्वीकार करने से ग़लतियों का गन्दा स्तर स्वतः हट जाता है और हृदय का अंतरतम स्तर अपनी स्वाभाविक स्वच्छता और चमक के साथ सबल रूप में ऊपर आ जाता है। मैं अपनी ग़लती स्वीकार करने में शक्ति का अनुभव करता हूँ। अनुचित मार्ग से पैर मोड़कर मैं अपने आदर्श और ध्येय को शुद्ध मार्ग पर अग्रसर कर रहा हूँ। सीधे मार्ग से हठपूर्वक अलग ही हटकर कोई अपने ध्येय नहीं प्राप्त कर सका है। कुछ लोगों ने कहा कि चौरीचौरा बारदोली पर प्रभाव नहीं डाल सकता। मुझे भी इसमें संदेह नहीं हैं। बारदोली के लोग भारत में सब से शान्ति-प्रिय लोग हैं। पर फिर भी बारदोली भारत के मानचित्र में एक स्थान-मात्र ही है। इसके प्रयास जब तक भारत के अन्य भाग सहयोग न करें, सफल नहीं हो सकते।...... जिस प्रकार खटाई का ज़रा सा टुकड़ा दूध को खराब कर देता है उसी प्रकार बारदोली की सुजनता और त्याग को चौरीचौरा का विष ख़राब कर देगा। भारत की नेकनामी या बदनामी में चौरीचौरा उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि बारदोली। सामूहिक आज्ञा खंडन में उत्तेजना न होनी चाहिए। यह मौन होकर सहन करने की कला है। इसके

प्रभाव यद्यपि सूक्ष्म तथा सौजन्यपूर्ण होते हैं, पर आश्चर्यजनक होते हैं।......चौरीचौरा भारत की अकुशलता का सूचक है। इससे यह प्रमाणित होता है कि यदि सावधानी न की जाय तो भारत की जनता कहाँ से कहाँ जा सकती है। यदि हम लोग अहिंसा के स्थान पर हिंसा का प्रकोप नहीं देखना चाहते तो हमें अपने पैर तुरन्त मोड़कर सामूहिक आज्ञा-खंडन को रोककर भारत में शान्ति स्थापित करनी चाहिए।......शत्रुओं को हमारी तथा उचित हार पर प्रसन्न होने दो। कायर कहलाना अच्छा है पर अपने धर्म, वचन, सत्य एवं अहिंसा से हटकर ईश्वर की आँखों में अपराधी बनना अच्छा नहीं;

आदर्श ऋषि ने यहीं बस नहीं किया। उसने कहा "मुझे इन पापपूर्ण घटनाओं के लिए बहुत पश्चात्ताप करना होगा। अपने देश के आध्यात्मिक वायुमंडल की तनिक भी अशुद्धता को शुद्ध करने का मुझे ही सफल साधन बनना चाहिए। मेरी प्रार्थनाओं में सत्य और नम्रता होनी चाहिए। मेरे लिए पवित्रीकरण के व्रत से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। पूर्ण आत्म-अभिव्यक्ति के लिए और शरीर की भौतिकता पर आध्यात्मिकता की सत्ता की स्थापना के लिए व्रत व्यक्तिगत विकास का सर्वोत्तम और सबल साधन है।"

और वे अपने को लगातार पाँच दिन का निराहार व्रत दण्ड स्वरूप दे देते हैं। अपने ही द्वारा अपने को दण्ड! पर वे अपने सहकारियों को इस उदाहरण का अनुगमन करने से रोकते हैं। वे अपने को दण्ड देना आवश्यक समझते हैं, "मैं एक ऐसे अभागे सर्जन की दशा में हूँ जिसने अपने को एक संदिग्ध रोगी की चिकित्सा में अकुशल प्रमाणित कर दिया हो। मुझे या तो अब यह क्षेत्र छोड़ देना चाहिए या अधिक कुशल बनना चाहिए।" उनका व्रत उनके लिए और चौरी चौरा के उपद्रवियों के लिए दण्ड स्वरूप है। गाँधी जी उन लोगों के स्थान पर अकेले स्वयं कष्ट झेलना पसन्द करेंगे। पर फिर भी वे

उन लोगों को सलाह भी देते हैं कि वे स्वेच्छापूर्वक अपने को पुलिस के हाथों सौंपकर अपने कार्यों को स्वीकार करें क्योंकि उन्होंने ऐसा करके देश के कार्य को आघात पहुँचाया है।

"मैं अपमान सहूँगा, सभी कष्ट, संपूर्ण बहिष्कार यहाँ तक कि मृत्यु भी सहूँगा पर आन्दोलन को अहिंसात्मक के स्थान पर हिंसात्मक बनाकर देश का अहित न होने दूँगा।"

मानव आध्यात्मिकता के विकास के इतिहास में इस प्रकार के भव्य दृश्य कदाचित् ही कहीं ढूढ़ने मे मिलें। इस व्रत का चारित्रिक मूल्य अतुलनीय है। पर राजनैतिक दृष्टि से यह कार्य और व्रत दोनों ही अनावश्यक हैं, गाँधी जी ने ऐसा स्वयं स्वीकार किया है।

अतएव जब दिल्ली में २४ फ़रवरी १९२२ को काँग्रेस कमेटी की बैठक हुई तो गाँधी जी को प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। बारदोली की वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव बिना वादविवाद के वापस नहीं लिया गया। असहयोगियों में दो दल हो गए। पर गाँधी जी ने अपना पक्ष साफ़ करते हुए कहा कि जब तक देश एवं राष्ट्र अच्छी तरह तैयार न हो जाय मैं सामूहिक आज्ञा-भंग-आन्दोलन चलाना कदापि उचित नहीं समझता। इसके लिए उन्होंने एक रचनात्मक कार्यक्रम कमेटी के सामने पेश किया। पर कुछ लोग स्वतंत्रता-आन्दोलन की धीमी-गति से बहुत ही असंतुष्ट थे। उन्होने सामूहिक आज्ञा-भंग-आन्दोलन को स्थगित करने का विरोध किया। उन्होंने कहा कि गाँधी जी की प्रणाली से देश की प्रगति में बाधा पड़ रही है। कमेटी में वोट आफ़ सेन्सर पास करने का विचार हुआ। पर अन्त में गाँधी जी की ही बात मानी गई। पर इससे उनको बड़ा दुःख हुआ क्योंकि वे सोचने लगे कि जनता के बहुत से लोग उनका पूरी तरह साथ नहीं दे रहे थे। कुछ लोगों ने उनके परोक्ष में उन्हें "डिक्टेटर" कहकर उनकी निन्दा किया। वे समझने लगे कि अब वे बहुसंख्यक जनता के हृदयों

का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे। पर फिर भी उनका विश्वास अहिंसा पर अटल रहा। २ मार्च १६२२ के लेख में उन्होंने अपना विचार स्पष्ट कर दिया था।

उन्होंने कहा कि यदि यही सच है कि हम हिंसा ही करके स्वराज्य पा सकते हैं तो फिर हम हिंसा ही क्यों न करें। जी खोलकर जितनी हिंसा हो सके करें और करके देखें कि कितने अंश तक स्वराज्य मिलता है। ऐसी दशा में हमें ढोंगी कहकर कोई बदनाम न कर सकेगा। पर अहिसा की दुहाई देना और हिंसा करना यह सीधा-सीधा ढोंग है। कांग्रेस ऐसी धार्मिक और आदर्श संस्था में ढोंगियों का स्थान न होना चाहिए।

उन्होंने फिर कहाः—सच्चे देश-प्रेमी थोड़े और शान्त स्वभाव के हैं। वे सत्य और अहिंसा में पूरा और सच्चा विश्वास करते हैं। जिन्हें सत्य और अहिंसा पर विश्वास नहीं है वे व्यर्थ में देश-प्रेम का डींग हांककर देश प्रेमियों और कांग्रेस को बदनाम करते हैं।

इन शब्दों में गांधी जी का प्रबल व्यक्तित्व है। इसी बीच गांधी जी की गिरफ़तारी की भी ख़बर फैल रही थी। गांधी जी तैयार बैठे थे। किसी भी दिन गिरफ़्तार हो जाने की उन्हें संभावना थी। पर कदाचित अपने हृदय के गहनतम स्तरों में वे ऐसे कारागार को ही मुक्ति समझते थे।

३

§

बहुत दिनों तक गांधी जी को गिरफ्तार होने की आशा बनी रही। १७ नवम्बर से ही उन्होने अपना सब सामान ठीक-ठाक करके जेल जाने की तैयारी कर रखी थी। "यदि मैं जेल गया" नामक लेख

में उन्होंने देश को आदेश दिया था। उन्होंने कहा मैं सरकार मे नहीं डरता। "सरकार द्वारा बहाई हुई रक्त की नदियां मुझे भयभीत नहीं कर सकतीं।" उन्हें डर जनता का था कि कहीं उनकी गिरफ्तारी सुनकर जनता न पागलपन कर बैठे। यह उनके लिए अपमान जनक होता" मेरी इच्छा है कि लोग पूर्ण आत्म-नियंत्रण रखें और मेरी गिरफ्तारी के दिन खुशी मनावें। सरकार सोचती है कि यह आन्दोलन मैं ही हूँ और यदि मैं हटा लिया जाऊँ तो आन्दोलन आत्महीन होकर शान्त हो जायगा। इसको अभी जनता की शक्ति की थाह लेना बाकी है। पर मैं ऐसा न चाहूँगा। लोग पूरी तरह शान्ति स्थापित रखे। सरकार यदि मुझे विद्रोह के डर के कारण गिरफ्तार न करे तो मुझे कोई हर्ष या अभिमान नहीं है—वरन् इसमें मेरा अपमान है।" जनता रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरी तरह व्यवहार में लावे। हड़ताल न हो, जलूस न निकलें, पर असहयोग पूरी तरह व्यवहार में आवे। लोग किसी भी प्रकार सरकार से सहयोग न करें। स्कूल और कचहरी कोई न जाय। यदि लोग इस प्रकार आचरण करेंगे तो जीतेंगे वर्ना हार जायेंगे।

जब सब कुछ ठीक हो गया तो गांधी जी अपने प्रिय साबरमती आश्रम में अपने सुहृद जनों के बीच गए और वहां शान्तिपूर्वक पुलिस के सिपाहियों की प्रतीक्षा करने लगे। वे चाहते थे कि हम कारागार की भी सेवा करें। उन्हें विश्वास था कि उनकी अनुपस्थिति मे भारत उनके विचारों पर पुनर्विचार करके एक मत अपनाएगा। इसके अतिरिक्त भी वे जेल जाकर शारीरिक विश्राम और शान्ति का अनुभव करना चाहते थे। कदाचित् उन्हें शान्ति और विश्राम की आवश्यकता थी भी।

१० मार्च की रात में पुलिस के सिपाही गाँधी जी के आश्रम में आए। उनके आने की खबर आश्रम में मिल गई थी और गाँधी जी ने

अपने को आगे बढ़कर समर्पित किया। रास्ते में उन्हें उनके मुसलिम मित्र मौलाना हसरत मोहानी अंतिम बार आलिंगन करने को मिले। "यंग इंडिया" के संपादक भी उनके साथ जेल भेज दिए गए। गाँधी जी की पत्नी को जेल के फाटक तक उनका अनुसरण करने की आज्ञा मिल गई थी।

१२ मार्च के दोपहर में गाँधी जी का प्रसिद्ध अभियोग प्रारम्भ हुआ। इसमें गाँधी जी ने दुर्लभ श्रेष्ठता और शालीनता का परिचय दिया। जज ब्रूम्सफ़ील्ड ने भी प्रभावित होकर अपने सुजनता और सभ्य व्यवहार की हद कर दी। पूरा मुकदमा तो बड़ा लम्बा चौड़ा है। हम उसे संक्षेप में यों लिखते हैं।

सरकार ने गाँधी जी को अन्त में क्यों क़ैद किया? लगभग दो साल तक असहयोग चलने के बाद सरकार ने इसी समय क्यों गाँधी जी को क़ैद करना उचित समझा? क्या सरकार मूर्खता पर उतारू थी? या वह गाँधी जी के इन प्रसिद्ध शब्दों को सत्य करने पर थी कि "मानों सरकार इस देश को हत्या, लूट-पाट, मार-काट और व्यभिचार से भरा पुरा देखना चाहती है जिससे कि उसे यह कहने को मौका मिले कि इस परिस्थिति को शान्त रखने के लिए इस देश में हमारी बड़ी आवश्यकता है।"

सरकार बड़ी कठिन दशा में थी। वह गाँधी जी से डरती थी और उनसे नरमी का बरताव करना चाहती थी पर वे उसको रूखे और क्रुद्ध शब्दों में ताड़ित कर रहे थे। गाँधी जी ने सरकार की हिंसाओं का प्रबल विरोध किया था और २३ फ़रवरी को उन्होंने सरकार के बिरुद्ध एक बहुत अपमानजनक लेख लिखा था। इसमें इन्होंने सरकार को शोषण का अपराधी ठहराया था और लिखा था कि यदि ईश्वर की भी कोई सत्ता संसार में है तो यह राज्य भारत से शीघ्र नष्ट हो जायगा।

इस लेख पर और १६ सितंबर १९२१ के लेख तथा १५ दिसंबर

१६२१ के लेख पर उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया था पहला अलीबन्धुओं के गिरफ़्तार होने पर लिखा गया था और दूसरा लार्ड रीडिंग के एक भाषण के उत्तर में लिखा गया था। दोनों में अन्त तक लड़ने की घोषणा है।" हम स्वराज चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सरकार जनता की इच्छाओं के सामने झुक जाय।" इसलिए अभियोग यह लगाया गया था कि गाँधी जी ने जनता में सरकार के विरुद्ध घृणा की भावना का प्रचार किया और अन्य लोगों को सरकार को नष्ट कर देने के लिए प्रोत्साहित किया। गाँधी जी ने सभी अभियोगों को स्वीकार किया और अपने पक्ष का औचित्य प्रकट किया।

बम्बई के ऐडवोकेट जेनरल सर जे० टी० स्ट्रैंगमैन ने गाँधी जी के उच्च आचार की प्रशंसा करते हुए उसी को सरकार के हक में हानिकारक बतलाया। उन्होंने कहा कि यद्यपि गाँधी जी अहिंसा का प्रचार करते हैं फिर भी जनता में सरकार के घृणा के प्रति भाव भरते हैं। उन्होंने गाँधी जी को बंबई और चौरीचौरा की हिंसाओं का कारण बतलाया और कहा कि इन्हीं की शिक्षा के कारण ये सब घटनाएं हुईं।

इस पर गाँधी जी ने कहा :—

विज्ञ ऐडवोकेट जेनरल ने ठीक ही कहा कि पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने तथा संसार का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद मुझे एक उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति की भाँति अपने प्रत्येक कार्य का परिणाम पहले सोच लेना चाहिए था। मैं जानता था कि मैं आग से खेल रहा हूँ और यदि मैं मुक्त कर दिया जाऊँ तो फिर खेलूँगा। आज सुबह मुझे अनुभव हुआ कि यदि जो कुछ मैं अभी कह रहा हूँ उसे यदि यहाँ न कहूँ तो अपने कर्तव्य से गिर जाऊँगा।

मैं हिंसा बचाना चाहता था—मैं अब भी हिंसा बचाना ही चाहता हूँ। मेरे विश्वास का प्रथम सोपान अहिंसा है। यही उसका अन्तिम सोपान भी है। पर मुझे दो बातों में से एक पसन्द करने पर

बाध्य होना पड़ा। या तो मैं एक ऐसी व्यवस्था को सहन करता जिसने मेरी समझ में मेरे देश और समाज को अत्यन्त हानि पहुँचाई, या फिर अपने शब्दों द्वारा सत्य और वास्तविकता से परिचय-प्राप्त जनता के उन्माद कर परिणाम झेलता। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी हमारी जनता उन्मत्त हो जाती है। मैं इसके लिए हृदय से खिन्न हूँ—और यही सोचकर मैं यहाँ पर आया हूँ, इसलिए नहीं कि मुझे हलका फुलका दण्ड मिले, वरन् इसके लिए कि मुझे कड़े से कड़ा दण्ड मिले। मैं दया की प्रार्थना नहीं करता। मैं किसी भी बात की सफ़ाई नहीं देना चाहता। जिसे कानून सहठ अपराध समझता है, पर जिसे मैं एक सच्चे नागरिक का परम कर्तव्य समझता हूँ, उस सत्य के लिए मैं बड़े से बड़े और कड़े से कड़े दण्डों का स्वागत करता हूँ। न्यायाधीश! या तो तुम अपना पद त्याग करो या मुझे कड़ा से कड़ा दण्ड दो।

इसके बाद गांधी जी ने एक लिखित बयान पढ़ा। उसमें उन्होंने कहा कि मैं सरकार का सहयोगी होकर असहयोगी क्यों हुआ—इसका कारण सरकार स्वयं है। उन्होंने अफ्रीका आदि देशो में की हुई सरकार के प्रति सारी सेवाओं का जिक्र करते हुए कहा कि यह सब होते हुए भी कारण क्या है कि मैं १६१६ के बाद असहयोग करने पर बाध्य हो गया। कारण यह है कि मुझे विश्वास हो गया कि सहयोग करने से भारत में अंगरेज़ लोग उसकी कोई भलाई नहीं कर रहे हैं! बदले में सरकार की हिंसा-वृत्ति और उसका अन्याय और भी बढ़ चला है। इसने अपने अत्याचारी और अन्यायी नौकरो को दण्ड देने के स्थान उन्हें पेन्शन, पुरस्कार और उपाधियाँ दी है। स्वयं सरकार ने जनता से संबंध तोड़ लिया है। गाँधी अब इस नतीजे पर पहुँच चुका है कि यदि भारत के अभीष्ट सुधार दे भी दिए जायँ तो भी जो घृणा अंगरेज़ों के प्रति एक बार उत्पन्न हो चुकी है वह मिट नहीं सकती। भारत की सरकार जनता के शोषण पर आधारित है। यहाँ के

नियम इस शोषण में सहायता पहुँचाने की दृष्टि से बनाए गए हैं। उन नियमों का व्यवहार इस प्रकार होता है जिससे शोषण पूर्ण और सफल हो। एक सूक्ष्म पर प्रभावशाली आतंक ने जनता को चैतन्य करके मिल कर कार्य करना सिखला दिया है। भारत नष्ट हो गया, पतित हो गया और भूखों मर रहा है। पिछली किसी भी व्यवस्था से भारत में अंगरेज़ी व्यवस्था ने अधिक हानि पहुँचाई है। बुराई से असहयोग करना परमधर्म है। गाँधी ने अपने धर्म का पालन किया है। पर जहाँ पहले के असहयोग अब तक हिंसात्मक होते रहे गाँधी जी ने वहाँ उसे असहयोग की अहिंसा के रूप में अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली अस्त्र दे दिया है।

इसके बाद जज ब्रूमसफ़ील्ड और महात्मा में उच्च-भावनाओं की प्रतियोगिता सी हुई। जज ने कहा—

मिस्टर गाँधी, आपने अभियोग की धाराओं को स्वीकार करते हुए मेरा कार्य अपेक्षाकृत सरल कर दिया है। पर फिर भी एक सबसे बड़ी कठिनाई है और वह है आपके उपयुक्त दण्ड ढूँढ़कर आपको देना। भारत में किसी अन्य जज को इतनी बड़ी कठिनाई का सामना न करना पड़ा होगा।......यह भुलाया जा नहीं सकता, अपने देश के करोड़ों निवासियों के हृदय में आपका विशद और प्रशस्त स्थान है। वे आपको सच्चे देश-भक्त और महान् नेता की दृष्टि से देखते हैं। वे भी जो आपसे राजनीति में मतभेद रखते हैं आपके आदर्शों और ऋषि-जीवन का लोहा मानते हैं।... ..पर यहाँ आपको सरकारी निर्धारित नियमों के अनुकूल देखना मेरा कर्तव्य है।......कदाचित् भारत में ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जिन्हें इस बात का खेद न हो कि कोई भी सरकार आप ऐसी महान् आत्मा को स्वतंत्र विचरण करने देना असंभव बना दे। पर है ऐसा ही। आप जिसके पात्र हैं, और जो जनता के हित में है, इन दोनों में मैं सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

बहुत ही सौजन्य के साथ उन्होंने गाँधी जी से सलाह लिया कि उन्हें क्या दण्ड दिया जाय। "मैं सोचता हूँ कि आप अपने को तिलक की श्रेणी में रखा जाना अनुचित तो न समझेंगे। सोचने की बात है है कि तिलक पहले १२ बरस फिर ६ बरस का कारावास-दण्ड पाए थे।" पर यदि किसी परिस्थिति ने सरकार को इससे पहले ही आपको मुक्त कर देना संभव किया, तो मुझसे अधिक और कोई भी व्यक्ति प्रसन्न न होगा।"

गाँधी जी ने सहर्ष कहा कि यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है कि सरकार मुझे ऐसा दण्ड देकर तिलक का स्थान दे रही है। पर मुझे यह भी दण्ड बहुत हलका मालूम होता है, मैं इससे भी बड़े दण्ड की आशा करता था।

इस प्रकार अभियोग समाप्त हुआ। गांधी जी के मित्र सिसकते हुए उनके पैरों से लिपट रहे। महात्मा ने मुस्कराते हुए उनसे विदा मांगी।

साबरमती जेल की दीवारों ने उन्हें पाकर प्रसन्नतापूर्वक अपने दोनों नेत्र बन्द कर लिए।[1]

[1] श्रीमती कस्तूर बा गांधी ने भारतवासियों को गाँधी जी की जेल-यात्रा की सूचना देते हुए—बहुत ही सुन्दर ढंग से उन्हें शान्ति और अहिंसा-पूर्वक रहने का संदेश दिया था। उन्होंने देश को गाँधी जी के क्रियात्मक प्रोग्राम को पूर्ण करने के लिए कहा था।

गाँधी जी साबरमती में बड़े अच्छे ढंग से रखे गए थे। पर यह अधिक दिन न चल सका। शीघ्र ही वे वहाँ से एक अज्ञात जेल में भेज दिए गए और उसके बाद यरवदा भेज दिए गए। यूनिटी मई १८ १९२२, में निकले हुए "जेल में गाँधी" नामक वन्० डी० हार्डिकर के एक लेख से पता चलता है कि गाँधी जी को एक अंध कोठरी में यों ही डाल दिया गया है और उनमें और अन्य कैदियों में कोई विशेषता

§

४

तब से उस महर्षि के स्वर नहीं सुनाई पड़ रहे हैं। उनका भौतिक शरीर जेल की दीवारों में यातनाएँ सह रहा है, पर उनकी आत्मा "शान्ति अहिंसा और सहनशीलता" के रूप में समस्त भारत में व्याप्त है।[१] उनके जिस संदेश को लोगों ने सुन लिया है उसे अब भूल नहीं सकते। तीन साल पहले यदि गाँधी जी कैद हुए होते तो भारत खून से रंग जाता। १९२० में यदि इसकी अफ़वाह भी फैल जाती तो ईश्वर जाने जनता क्या कर डालती। पर अहमदाबाद के फैसले को लोगों ने शान्ति के साथ सुना और आध्यात्मिक बल के साथ सहा। अहिंसा और

नहीं बरती जाती। इस दरमियान उनकी तन्दुरुस्ती बहुत बिखर गई थी।

पर "मिस्टर सी० यफ़ ऐन्ड्रूज़ ने मुझसे कहा कि महात्मा जी जेल में प्रसन्न हैं और उन्होंने कहा है कि मुझसे कोई न मिले—मैं अपनी आत्मा शुद्ध और पवित्र करने में लगा हूँ।"

बात ही बात में ऐन्ड्रूज़ ने यह भी बतलाया कि गाँधी जी की जेल के बाद उनकी पार्टी फिर ज़ोर पकड़ रही थी। लोग उन्हें अब श्रीकृष्ण का अवतार फिर सोचने लगे क्योंकि वे भी कारागार में बन्द रखे गए थे। और जेल में रहकर वे अहिंसा का अधिक प्रचार कर सके हैं बनिस्बत बाहर स्वतंत्र रहने के।

[१] ३ अगस्त १९२२ को यूनिटी में छपे हुए "जेल से पत्र" नामक लेख में गांधी जी ने आधुनिक सभ्यता की बुराइयों का चित्र खींचा था। यह पत्र मुझे कुछ समय पहले हिन्द स्वराज में लिखे गए एक लेख का निचोड़ मालूम हुआ।

सहनशीलता के स्वर्णिम सिद्धान्त को लेकर हजारों भारत के नौनिहाल गाँधी जी के साथ जेलों की दीवारों में चले गए।

अहिंसा और सत्य का प्रभाव जैसा कि देशबन्धु ऐण्ड्रूज ने कहा है भारत में भुलाया नहीं जा सकता। उसी साल जब सिक्खों के गुरु का बाग नामक उत्सव अमृतसर में हो रहा था तो केवल कुछ ही लोग अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में बचे थे; शेष सभी वहाँ से दस मील दूर जलियानवाला बाग़ में जा पहुँचे और वहाँ सब ने शपथ खाई कि हम सत्य और अहिंसा की रक्षा करके या तो गुरु का बाग़ प्राप्त करेंगे या फिर निश्चित रुप में समर-स्थल से वापस आवेंगे। सैकड़ों की तादाद में पुलिस के सिपाही इस बात को रोकने के लिए तैनात किए गए और लगभग रोजाना कुछ न कुछ झंझट पुलिस और सिखों में हुआ पर सिख लोग भला क्यों मानते। सिपाहियों ने उन्हें वहाँ से हटाने के लिए लोहों के डण्डों से यहाँ तक पीटा कि वे बेहोश हो-होकर गिर पड़ते थे, पर जैसे ही उनमें खड़े होने की चेतना आती थी वे फिर उठकर वही प्रार्थना वही शपथ दुहराने लगते थे। ऐण्ड्रूज कहते हैं—उनमें एक अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति सी आ गई है जिसे पुलिस की वाह्य शक्तियाँ पराजित नहीं कर सकतीं। हज़ार-हज़ार सिखों की लगभग पचीस टोलियाँ रोजाना वहाँ जाकर वही प्रार्थना किया करती थी।

ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों भारत की जनता गाँधी जी के आदेशों का पालन अपने तथाकथित लीडरों से भी अधिक करने लगी। गाँधी जी के विरोधियों की लिप्साएँ शान्त न थीं। ७ जून १६२२ को जब गाँधी जी की सजा के बाद कांग्रेस कमेटी फिर लखनऊ में बैठी तो उन लोगों ने गाँधी जी के कार्यक्रम का खण्डन करके फिर से सामूहिक आज्ञा-भंग करने का प्रस्ताव चलाया। एक कमीशन देश की स्थिति देखने के लिए बनाई गई कि वह जांच करे कि देश ऐसे

आन्दोलन के लिए पूर्ण रूप से उपयुक्त है या नहीं। कमीशन ने सारे भारत में दौरा किया और अन्त में दूसरी रिपोर्ट ने उस प्रस्ताव का निराशाजनक उत्तर दिया।

दिसंबर १६२२ में नेशनल इंडियन कांग्रेस ने गांधी जी का अक्षरशः समर्थन किया और असहयोग आन्दोलन को जारी रखने का प्रस्ताव पास किया। सब ने एकमत होकर कहा कि गाँधी ने जो कुछ कहा सत्य कहा; और अब उन्हीं की प्रणाली के अनुसार असहयोग आन्दोलन फिर से चलाया जाय। पर अँगरेजी वस्तुओं के बायकाट करने का प्रस्ताव न पास हो सका किन्तु मुसलमानों की ख़िलाफ़त कान्फरेन्स ने जो सदा ही गरम ख़ून वाली रही थी, इस प्रस्ताव को भी पास कर दिया।

गाँधी जी की अनुपस्थिति में उनका आन्दोलन, उन्हीं की प्रणाली पर सफलतापूर्वक अनुसरण करता चल रहा है और १६२२ के कांग्रेस के गया कान्फरेन्स की समाप्ति के बाद, अँगरेजी प्रेस इस आन्दोलन की सफल प्रगति पर आश्चर्य और अपनी निराशा प्रकट कर रहें हैं।[१]

[१] ब्लांश वारटन ने १६ नवंबर १६२२, में यूनिटी में एक लेख प्रकाशित कराया था उसमें उन्होंने उन सभी लाभों को गिनाया था जो भारतीयों ने अहिंसात्मक लड़ाई लड़कर पाया था।

इस लेख में कहा गया था कि भारत की आन्तरिक मालगुज़ारी या करों में ७०,०००,००० डालर की कमी आ गई थी और अँगरेज़ी वस्तुओं के बायकाट करने से एक ही साल में २०,०००,००० डालर की हानि इंगलैण्ड को पहुँची थी यद्यपि इस समय लगभग ३०,००० भारतवासी कैद हैं पर ब्लांश वारसन ने इस अन्दोलन को सफल कहा है और इसकी सफलता पर आश्चर्य और उत्सुकता भी दिखलाई है।

मांचेस्टर गार्जियन के एक लेख से मालूम होता है कि यह

§

५

और अब क्या होगा ? क्या पिछले अनुभवों से सजग इंगलैंड भारत की जनता की इच्छाओं को अपने अनुकूल बनाएगा ! क्या ये भारतीय अपने सिद्धान्त पर अटल रह सकेंगे ? राष्ट्रों की स्मरण-शक्ति थोड़ी होती है और मुझे भारत को महात्मा जी के आदर्शों पर सदैव चल सकने की क्षमता में संदेह होना चाहिए। यदि महात्मा जी के सिद्धान्त भारत की प्राचीनतम परम्पराओं के अनुकूल नहीं हैं। किसी भी क्रियाशील महान् नेता में महानता तब तक नहीं आ सकती जब तक वह अपने देश के प्राचीन और सुदृढ़ संस्कारों से अपनी आत्मा को पुष्ट नहीं कर लेता।

अहिंसात्मक आन्दोलन कितना सफल रहा है। इसमें लिखा हुआ था, भारत में असहयोग अन्दोलन दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा और यह हमारी सरकार, हमारे व्यापार तथा हमारी सत्ता की जड़ खोदने पर तुला हुआ है, इससे बड़ी हानि हो रही है चारों ओर लोग विदेशी सरकार को संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। सभी पढ़े लिखे और सभ्य भारतीय इस विदेशी हुकूमत से छुटकारा पाना चाहते हैं। यद्यपि अभी किसानों तक यह नहीं फैला है पर कुछ दिनों में वहाँ भी यही भावना नृत्य करने लगेगी। भारतीयों को जेल की धमकी देकर वश में रखना अब कठिन हो रहा है। वे लोग अब जेल से नहीं डरते अब और कड़े उपायों से काम लेना पड़ेगा—पर शायद इससे और भी उपद्रव बढ़े। अब केवल एक ही उपाय है और वह भी यदि बासी न हो गया हो तो—वह है भारत में अंगरेजी सरकार को सुधार करना और किसी अन्य आधे दिल से किए गए या सोचे गए काम से परिस्थिति वश में नहीं आ सकती। इंगलैण्ड को एक राष्ट्रीय सम्मेलन करके

यह बात महात्मा गाँधी में है। उनका अहिंसा का सिद्धान्त भारत की आत्मा पर दो हज़ार वर्षों से भी पहले से अंकित है। महावीर, बुद्ध और वैष्णव-सम्प्रदाय ने इसे भारत के करोड़ों नर-नारियों की अपनी प्रिय वस्तु बना दिया है। गाँधी जी ने इसमें केवल वीरता का समन्वय भर किया है उन्होंने युगों से सोए हुए निद्रित राष्ट्र में क्रियात्मकता का प्राण फूँका। उनमें भारत की जनता ने अपना दर्शन पाया। "गाँधी" शब्द मात्र ही नहीं वरन् उदाहरण स्वरूप है। इसमें भारतीयों की आत्मा अवतरित है। वह जनता धन्य है जो उनकी जनता है और जो अपने को उन्हीं में पाती है।

सारा संसार हिंसा की आँधी से मस्त है। यह आँधी यकायक किसी स्वच्छ आकाश से नहीं आई इसका आविर्भाव 'सदियों की बर्बर राष्ट्रीय अहम्मन्यता, क्रान्ति की मूर्तिवत् पूजा, औद्योगिकता के उन्माद, आत्मा की शक्ति को कुचलने वाली भौतिकता की भयानकता और पश्चिम की पैशाचिकता में छिपा हुआ है। यह सब अवश्यम्भावी था—यह कहना संतोषजनक न होगा। प्रत्येक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को उन्हीं सिद्धान्तों के लिए कुचल रहा है जो कि

इसमें सभी वर्गों और जातियों को बुलाना चाहिए। सबको एक साथ मिलकर होमरूल का विधान बनाना चाहिए। साम्राज्य को विनाश से बचाने का यही एक मार्ग है।

यद्यपि मुझे यह आशा नहीं है कि गाँधीवादी इन पश्चिमी विदेशियों से कोई ऐसा समझौता करेंगे—पर फिर भी रास्ता यही है कि इंगलैण्ड भारत को स्वतंत्र कर दे। सबसे बड़ा आश्चर्य तो मुझे यह देख कर होता है कि थोड़े ही समय में इंगलैण्ड का भारत के प्रति व्यवहार कितना बदल चुका। अब वह भारतीयों को घृणा की दृष्टि से नहीं देखते वरन् आदर की दृष्टि से देखकर उनके कथन पर विचार करते हैं।

उसमें भी वर्तमान है। सभी चाहे वह राष्ट्रीय हों या फासिस्ट और बोल्शविस्ट, पीड़क या पीड़ित कुछ भी हों, सभी चिल्ला रहे हैं कि उन्हें शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार है और जब कोई अन्य उसी शक्ति का प्रयोग उनके विरुद्ध करता है तो वे विरोध करते हैं। ५० वर्ष पहले ही न्याय को शक्ति से कुचला गया था। आज परिस्थिति और भी गई गुजरी है। आज तो बर्बर शक्ति ने न्याय को एकदम ही पी लिया है।

संसार गिरता चला जा रहा है। कोई आशा नहीं, कोई चारा नहीं। मन्दिरों से शिथिल सलाह मिलती है। जो कुछ सलाह हमारे धार्मिक मंदिर देते भी हैं, उनका उदाहरण स्वयं नहीं रख पाते। दुर्बल शान्तिप्रिय लोगों के स्वर उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, लोग सोचते हैं कि वे हिचकते हैं या रुकते हैं—एक ऐसी बात जिसमें कि उन्हें विश्वास ही नहीं है। पर उनके विश्वास को प्रमाणित कौन करेगा? विश्वास क्रिया द्वारा प्रमाणित होता है और यही गाँधी द्वारा कथित भारत का संसार के उसके हित के लिए सुखद सन्देश है। यह संदेश है "आत्म-त्याग"।

टैगोर ने भी इन्हीं शब्दों को दुहराया है क्योंकि ऊँचे सिद्धान्तों पर टैगोर भी गाँधी जी से सहमत हैं।

मैं आशा करता हूँ यह आत्म-त्याग और सहनशीलता की भावना संसार में बढ़ेगी। यही सच्ची स्वतंत्रता है। इससे ऊँचा और कोई आदर्श नहीं है।"

"हमारा ध्येय" गाँधी जी ने कहा, "सारे संसार मे बंधुत्व का भाव स्थापित करना है। अहिंसा मनुष्यों को प्राप्त हो चुकी है और अब मानव जाति में रहेगी। यही संसार में शान्ति का एक-मात्र साधन है।"

संसार की शान्ति तो अभी दूर है। हम भ्रम में नहीं पड़ सकते।

इन पचास वर्षों में संसार को पाखंड, कायरता, और नृशंस हिंसा का पर्याप्त प्रमाण मिल चुका है। पर इसके अर्थ यह नहीं कि हम मानवता से प्रेम करना छोड़ दें क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अनंत ईश्वर का कुछ अंश होता है। हम आधुनिक संसार के भौतिक बन्धनों को जानते हैं, हम पारस्परिक प्रतिद्वंदी आर्थिक निश्चयात्मकता को भी जानते हैं हम जानते हैं कि सदियों की पाशविकताओं और त्रुटियों ने हमारी आत्मा पर वह काला आवरण डाल रखा है जिसे किसी भी प्रकार का प्रकाश नहीं भेद सकता पर फिर भी हम जानते हैं कि आत्मा की शक्ति क्या नहीं कर सकती।

इतिहासकारों! हमने इसे अपने आकाश से भी गंदे आकाश को निर्मल करते देखा है। हम लोग जिनका जीवन केवल कुछेक दिन का ही है, भारत के उस 'शिव' का संदेश पा चुके हैं जो अपने प्रलयकारी नेत्रों को ढँककर संसार को पतन के गड्ढे से बचाने के लिए उसे अपने ताण्डव के चरण न्यास द्वारा मंगलमय अवस्था में पहुँचा कर पुनःसृजन का अवकाश देता है।

जो सच्चे हिंसा के पुजारी एवं क्रान्तिकारी हैं वे हमें नहीं समझ पाते; उन्हें सत्य का ज्ञान नहीं। उन्हें हमारी हँसी उड़ाने दो, हमारा विश्वास यही है। हम जानते हैं कि योरप में हमारे विश्वासों का दमन होता है। तुम जानते हो कि हम लोगों की संख्या इनी-गिनी है। पर यदि मैं केवल अकेले ही इसका विश्वासी होता तो भी क्या हानि थी; विश्वास का लक्षण संसार के विरोध का गाथा गान नहीं है वरन् उन विरोधों के होते हुए भी अटल रहना चाहिए। विश्वास एक संग्राम है और हमारी अहिंसा एक बहुत ही विकट संग्राम है। शान्ति का मार्ग निर्बलता से होकर नहीं जाता। हम लोग हिंसा से उतना युद्ध नहीं करते जितना कि दुर्बलता से। कोई भी वस्तु चाहे अच्छी हो या बुरी, जब तक सबल नहीं होती कभी उपयुक्त नहीं होती।

पूर्ण पाप अच्छा है, पर पौरुषहीन पुण्य नहीं। कराहती हुई शान्ति-प्रियता शान्ति के मृत्यु की घंटी है, कायरता और विश्वास-हीनता है। वे जो विश्वास नहीं करते, डरते हैं, मार्ग से हट जायँ। शान्ति का मार्ग आत्म-त्याग से होकर जाता है।

यह है गाँधी जी का संदेश। कमी केवल क्रास की है। (इस पश्चिमी लेखक को ईसा मसीह और गाँधी में कोई अन्तर नहीं मालूम होता) सभी जानते हैं कि यहूदियों के मारे रोम ने अपने को ईसा मसीह के हाथों सौंप दिया था। ब्रिटिश साम्राज्य आजकल पुराने रोम से तनिक भी अच्छा नहीं है। पूर्वीय निवासियों के हृदयों में जागृति आ गई है और उसका स्पन्दन समस्त संसार अनुभव कर रहा है।

पुरातन धार्मिक भावनाओं में एक लहर आ गई है। सत्य तो यों है; या तो गाँधी की आत्मा इसी युद्ध में विजय प्राप्त करेगी और या तो फिर यही आत्मा मसीह और बुद्ध की भाँति फिर अवतरित होगी और तब तक अवतार लेती जायगी जब तक कि मनुष्य रूप में पृथ्वी पर ईश्वरत्व प्राप्त करके जीवन के सच्चे सिद्धान्तों को पूर्ण अवतार का स्वरूप न प्राप्त कर लेगी और एक नूतन शुद्ध पथ पर मानवता का नेतृत्व न कर लेगी।